कल्याण
संक्षिप्त
वराहपुराणाङ्क
वर्ष
५५
संख्या

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

१—'संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्क' नामक यह विशेषाङ्क प्रस्तुत है। इसमें प्रायः ४७२ पृष्ठोंकी पाठ्यसामग्री है। सूची आदिके ८ पृष्ठ अतिरिक्त हैं। कई बहुरंगे तथा इकरंगे चित्र भी दिये गये हैं।

२—जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क जानेके बाद ही शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, जिससे वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थ हानि न उठानी पड़े।

३—मनीआर्डर-कूपनमें और वी० पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या स्पष्टरूपसे अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या स्मरण न होनेकी स्थितिमें 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नया ग्राहक बनना हो तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय' के नाम भेजें, उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

४—ग्राहक-संख्या या 'पुराना-ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिख जायगा। इससे आपकी सेवामें 'संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० भी चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें, आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको नया ग्राहक बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका 'कल्याण' हानिसे बचेगा और आप 'कल्याण' के प्रचारमें सहायक बनेंगे।

५—'संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग शीघ्राति-शीघ्र भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग ४-५ सप्ताह तो लग ही सकते हैं। ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहक हमें क्षमा करेंगे। उनसे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनेकी प्रार्थना है।

६—आपके 'विशेषाङ्क'के लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये और उसीके उल्लेखसहित ही पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

७—'कल्याण-व्यवस्था-विभाग' तथा गीताप्रेसके नाम अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये। उनपर केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

८—'कल्याण-सम्पादन-विभाग', 'साधक-सङ्घ' तथा 'नामजप-विभाग'को भेजे जानेवाले पत्रादिपर भी पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

९—सजिल्द अङ्क देरसे ही जा सकेंगे। ग्राहक महोदय कृपापूर्वक क्षमा करें।

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

व० पु० अं० क्र—

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस विश्व-साहित्यके अमूल्य रत्न हैं। दोनों ही ऐसे प्रासादिक एवं आशीर्वादात्मक ग्रन्थ हैं, जिनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदिकी कोई बाधा नहीं है। आजके नाना भयसे आक्रान्त भोग-तमसाच्छन्न समयमें तो इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। धर्मप्राण जनताको इन मङ्गलमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंका अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे गीता-रामायण-प्रचार-सङ्घकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंको, जिनकी संख्या इस समय लगभग साढ़े चालीस हजारसे भी अधिक है, श्रीगीताके छः प्रकारके, श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके एवं उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणीमें रखा गया है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन एवं उपासना-की सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित हों।

पत्र-व्यवहारका पता—'मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)।

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये सदाचार, सत्यता, सरलता, निष्कपटता, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका संग्रह और असत्य, क्रोध, लोभ, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग २९ वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना हुई थी। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको ४५ पैसेके डाक-टिकट या मनीआर्डर अग्रिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली निःशुल्क मँगवाइये। संघसे सम्बन्धित सब प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये।

संयोजक—साधक-संघ, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय-विभाग, पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानस मङ्गलमय, दिव्यतम ग्रन्थ हैं, इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको पढ़कर भी अचिन्त्य लाभ उठाया है। लोकमानसको इन ग्रन्थोंके प्रचारसे अधिकाधिक उजागर करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग २० हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४५०० (साढ़े चार हजार) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर कार्ड डालें—

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्ककी विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

निबन्ध

१–भगवान् वराह कामादि शत्रुओंको नष्ट करें ('वराहपुराण'से) ··· ··· १
२–वेद-पुराणोंमें भगवान् श्रीयज्ञ-वराहका स्तवन [संकलित] ··· ··· २
३–पुराण (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत) ··· ४
४–भगवान् यज्ञवराह (पूज्यपाद अनन्तश्रीस्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज) ··· ··· ५
५–शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ··· ७
६–भारतीय संस्कृतिमें पुराणोंका महत्त्वपूर्ण स्थान (नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ··· ··· ९
७–वेदोंमें भगवान् यज्ञ-वराह (श्रीमद्रामानन्द-सम्प्रदायाचार्य, सारस्वत-सार्वभौम स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी महाराज) ··· १२
८–वराहपुराणके दो दिव्य श्लोक (श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी महाराज) ··· १३
९–आचार्य वेङ्कटाध्वरिकृत भगवान् वराहकी स्तुति १५
१०–भगवान् यज्ञवराहकी पूजा एवं आराधन-विधि १६

संक्षिप्त श्रीवराहपुराण

१–भगवान् वराहके प्रति पृथ्वीका प्रश्न और भगवान्‌के उदरमें विश्वब्रह्माण्डका दर्शन कर भयभीत हुई पृथ्वीद्वारा उनकी स्तुति ··· १७
२–विभिन्न सर्गोंका वर्णन तथा देवर्षि नारदको वेदमाता सावित्रीका अद्भुत कन्याके रूपमें दर्शन होनेसे आश्चर्यकी प्राप्ति ··· ··· १९
३–देवर्षि नारदद्वारा अपने पूर्वजन्मवर्णनके प्रसङ्गमें 'ब्रह्मपारस्तोत्र'का कथन ··· २३
४–महामुनि कपिल और जैगीषव्यद्वारा राजा अश्वशिराको भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकताका प्रत्यक्ष दर्शन कराना ··· ··· २५
५–रैभ्य मुनि और राजा वसुका देवगुरु बृहस्पतिसे संवाद तथा राजा अश्वशिराद्वारा यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणका स्तवन एवं उनके श्रीविग्रहमें लीन होना ··· ··· २७
६–पुण्डरीकाक्षपार-स्तोत्र, राजा वसुके जन्मान्तरका प्रसङ्ग तथा उनका भगवान् श्रीहरिमें लय होना ३०
७–रैभ्य-सनत्कुमार-संवाद, गयामें पिण्डदानकी महिमा एवं रैभ्य मुनिका ऊर्ध्वलोकमें गमन ··· ३४
८–भगवान्‌का मत्स्यावतार तथा उनकी देवताओंद्वारा स्तुति ··· ··· ३७
९–राजा दुर्जयके चरित्र-वर्णनके प्रसङ्गमें मुनिवर गौरमुखके आश्रमकी शोभाका वर्णन ··· ३९
१०–राजा दुर्जयका चरित्र तथा नैमिषारण्यकी प्रसिद्धिका प्रसङ्ग ··· ··· ४२
११–राजा सुप्रतीककृत भगवान्‌की स्तुति तथा श्रीविग्रहमें लीन होना ··· ··· ४७
१२–पितरोंका परिचय, श्राद्धके समयका निरूपण तथा पितृगीत ··· ··· ४९
१३–श्राद्ध-कल्प ··· ··· ५२
१४–गौरमुखके द्वारा दस अवतारोंका स्तवन तथा उनका ब्रह्ममें लीन होना ··· ··· ५५
१५–महातपाका उपाख्यान ··· ··· ५६
१६–प्रतिपदा तिथि एवं अग्निकी महिमाका वर्णन ५८
१७–अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और उनके द्वारा भगवत्स्तुति ··· ··· ५९
१८–गौरीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग, द्वितीया तिथि एवं रुद्रद्वारा जलमें तपस्या, दक्षके यज्ञमें रुद्र और विष्णुका संघर्ष ··· ··· ६१
१९–तृतीया तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें हिमालयकी पुत्रीरूपमें गौरीकी उत्पत्तिका वर्णन और भगवान् शंकरके साथ उनके विवाहकी कथा ··· ६५
२०–गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और चतुर्थी तिथिका माहात्म्य ··· ··· ६८
२१–सर्पोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और पञ्चमी तिथिकी महिमा ··· ··· ७०
२२–षष्ठी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें स्वामी कार्तिकेयके जन्मकी कथा ··· ··· ७२
२३–सप्तमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें आदित्योंकी उत्पत्तिकी कथा ··· ··· ७५

२४—अष्टमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें मातृकाओंकी उत्पत्तिकी कथा ७६
२५—नवमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें दुर्गादेवीकी उत्पत्ति-कथा ७८
२६—दशमी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें दिशाओंकी उत्पत्तिकी कथा ८०
२७—एकादशी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें कुबेरकी उत्पत्ति-कथा ८१
२८—द्वादशी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें उनके अधिष्ठाता श्रीभगवान् विष्णुकी उत्पत्ति-कथा ... ८२
२९—त्रयोदशी तिथि एवं धर्मकी उत्पत्तिका वर्णन ... ८३
३०—चतुर्दशी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन ८५
३१—अमावास्या तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें पितरोंकी उत्पत्तिका कथन ८७
३२—पूर्णिमा तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें उनके स्वामी चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णन ... ८८
३३—प्राचीन इतिहासका वर्णन ८९
३४—आरुणि और व्याधका प्रसङ्ग, नारायण-मन्त्र-श्रवणसे व्याधका शापसे उद्धार ... ९१
३५—सत्यतपाका प्राचीन प्रसङ्ग ९३
३६—मत्स्य-द्वादशीव्रतका विधान तथा फल-कथन ... ९५
३७—कूर्म-द्वादशीव्रत १००
३८—वराह-द्वादशीव्रत १००
३९—नृसिंह-द्वादशीव्रत १०३
४०—वामन-द्वादशीव्रत १०४
४१—जामदग्न्य-द्वादशीव्रत १०५
४२—श्रीराम एवं श्रीकृष्ण द्वादशीव्रत ... १०६
४३—बुद्ध-द्वादशीव्रत १०७
४४—कल्कि-द्वादशीव्रत १०८
४५—पद्मनाभ-द्वादशीव्रत ११०
४६—धरणीव्रत ११२
४७—अगस्त्य-गीता ११३
४८—अगस्त्य-गीतामें पशुपालका चरित्र ... ११५
४९—उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत ... ११६
५०—शुभ-व्रत ११७
५१—धन्य-व्रत ११९
५२—कान्ति-व्रत १२०
५३—सौभाग्य-व्रत १२१
५४—अविघ्नव्रत १२२
५५—शान्ति-व्रत १२३
५६—काम-व्रत १२३
५७—आरोग्य-व्रत १२४
५८—पुत्रप्राप्ति-व्रत १२५
५९—शौर्य एवं सार्वभौम-व्रत १२६
६०—राजा भद्राश्वका प्रश्न और नारदजीके द्वारा विष्णुके आश्चर्यमय स्वरूपका वर्णन ... १२७
६१—भगवान् नारायण-सम्बन्धी आश्चर्यका वर्णन ... १२९
६२—सत्ययुग, त्रेता और द्वापर आदिके गुणधर्म ... १३०
६३—कलियुगका वर्णन १३२
६४—प्रकृति और पुरुषका निर्णय १३५
६५—वैराज-वृत्तान्त १३६
६६—भुवन-कोशका वर्णन १३९
६७—जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित सुमेरुपर्वतका वर्णन ... १४१
६८—आठ दिक्पालोंकी पुरियोंका वर्णन ... १४३
६९—मेरुपर्वतका वर्णन १४४
७०—मन्दर आदि पर्वतोंका वर्णन १४५
७१—मेरुपर्वतके जलाशय १४६
७२—मेरुपर्वतकी नदियाँ १४७
७३—देवपर्वतोंपरके देव-स्थानोंका परिचय ... १४९
७४—नदियोंका अवतरण १५०
७५—नैषध एवं रम्यकवर्षोंके कुलपर्वत, जनपद और नदियाँ १५१
७६—भारतवर्षके नौ खण्डोंका वर्णन ... १५२
७७—शाक एव कुशद्वीपोंका वर्णन ... १५३
७८—क्रौञ्च और शाल्मलिद्वीपका वर्णन ... १५४
७९—त्रिशक्ति-माहात्म्य और सृष्टिदेवीका आख्यान १५५
८०—त्रिशक्ति माहात्म्यमें 'सृष्टि', 'सरस्वती' तथा 'वैष्णवी' देवियोंका वर्णन १५७
८१—महिषासुरकी मन्त्रणा और देवासुर-संग्राम ... १५९
८२—महिषासुरका वध १६१
८३—'त्रिशक्तिमाहात्म्य'में रौद्रीव्रत ... १६४
८४—रुद्रके माहात्म्यका वर्णन १६६
८५—सत्यतपाका शेष वृत्तान्त १६८
८६—तिलधेनुका माहात्म्य १७०
८७—जलधेनु एव रसधेनु-दानकी विधि ... १७३
८८—गुड़धेनु-दानकी विधि १७५
८९—शर्करा तथा मधुधेनुके दानकी विधि ... १७६

९०—'क्षीरधेनु' तथा 'दधिधेनु'-दानकी विधि ··· १७७
९१—'नवनीतधेनु' तथा 'लवणधेनु' की दानविधि ··· १७९
९२—'कार्पास' एवं 'धान्य-धेनु' की दानविधि ··· १८०
९३—कपिलादानकी विधि एवं माहात्म्य ··· १८१
९४—कपिला-माहात्म्य, 'उभयतोमुखी' गोदान, हेम-कुम्भदान और पुराणकी प्रशंसा ··· १८२
९५—पृथ्वीद्वारा भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन ··· १८६
९६—श्रीवराहावतारका वर्णन ··· ··· १८७
९७—विविध धर्मोंकी उत्पत्ति ··· ··· १८९
९८—सुख और दुःखका निरूपण ··· ··· १९१
९९—भगवान्‌की सेवामे परिहार्य बत्तीस अपराध ··· १९३
१००—पूजाके उपचार ··· ··· १९५
१०१—श्रीहरिके भोज्य पदार्थ एवं भजन-ध्यानके नियम १९८
१०२—मुक्तिके साधन ··· ··· २००
१०३—कोकामुखतीर्थ (वराहक्षेत्र) का माहात्म्य ··· २०१
१०४—पुष्पादिका माहात्म्य ··· ··· २०५
१०५—वसन्त आदि ऋतुओंमे भगवान्‌की पूजा करनेकी विधि और माहात्म्य ··· ··· २०७
१०६—माया-चक्रका वर्णन तथा मायापुरी (हरिद्वार) का माहात्म्य ··· ··· २०९
१०७—कुब्जाम्रकतीर्थ (हृषीकेश) का माहात्म्य, रैभ्यमुनिपर भगवत्कृपा ··· ··· २१६
१०८—दीक्षासूत्रका वर्णन ··· ··· २२३
१०९—क्षत्रियादि-दीक्षा एवं गणान्तिकादीक्षाकी विधि तथा दीक्षित पुरुषके कर्तव्य ··· २२६
११०—पूजाविधि और ताम्रधातुकी महिमा ··· २२८
१११—राजाके अन्न-भक्षणका प्रायश्चित्त ··· २३१
११२—दातुन न करने तथा मृतक एवं रजस्वलाके स्पर्शका प्रायश्चित्त ··· ··· २३२
११३—भगवान्‌की पूजा करते समय होनेवाले अपराधोंके प्रायश्चित्त ··· ··· २३३
११४—सेवापराध और प्रायश्चित्त-कर्मसूत्र ··· २३६
११५—वराहक्षेत्रकी महिमाके प्रसङ्गमे गीध और शृगालका वृत्तान्त तथा आदित्यको वरदान ··· २४
११६—वराहक्षेत्रान्तर्वर्ती 'आदित्यतीर्थ'का प्रभाव (खञ्जरीटकी कथा) ··· ···
११७—भगवान्‌के मन्दिरमे लेपन एवं संकीर्तनका माहात्म्य
११८—कोकामुख-बदरी-क्षेत्रका माहात्म्य ···
११९—'बदरिकाश्रम' का माहात्म्य ··· ··· २६०
१२०—उपासनाकर्म एवं नारीधर्मका वर्णन ··· २६२
१२१—मन्दारकी महिमाका निरूपण ··· ··· २६३
१२२—सोमेश्वरलिङ्ग, मुक्तिक्षेत्र (मुक्तिनाथ) और त्रिवेणी आदिका माहात्म्य ··· ··· २६५
१२३—शालग्रामक्षेत्रका माहात्म्य ··· ··· २७१
१२४—रुरुक्षेत्र एवं हृषीकेशके माहात्म्यका वर्णन ·· २७३
१२५—'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ और उसका माहात्म्य ··· २७५
१२६—स्तुतस्वामीका माहात्म्य ··· ··· २७७
१२७—द्वारका-माहात्म्य ··· ··· २७८
१२८—सानन्दूर-माहात्म्य ··· ··· २८०
१२९—लोहार्गल-क्षेत्रका माहात्म्य ··· २८१
१३०—मथुरातीर्थकी प्रशंसा ··· ··· २८३
१३१—मथुरा, यमुना और अक्रूरतीर्थोंके माहात्म्य ·· २८५
१३२—मथुरा-मण्डलके 'वृन्दावन' आदि तीर्थ और उनमे स्नान-दानादिका महत्त्व ··· २८९
१३३—मथुरा-तीर्थका प्रादुर्भाव, इसकी प्रदक्षिणाकी विधि एवं माहात्म्य ··· ··· २९१
१३४—देववन और 'चक्रतीर्थ'का प्रभाव ··· २९४
१३५—'कपिल-वराह'का माहात्म्य ··· २९६
१३६—अन्नकूट (गोवर्धन) पर्वतकी परिक्रमाका प्रभाव ··· ··· ··· २९९
१३७—असिकुण्ड-तीर्थ तथा विश्रान्तिका माहात्म्य ·· ३०२
१३८—मथुरा तथा उसके अवान्तरके तीर्थोंका माहात्म्य ··· ··· ··· ३०४
१३९—गोकर्णतीर्थ और सरस्वतीकी महिमा ··· ३०५
१४०—सुगोका मथुरा जाना और वसुकर्णसे वार्तालाप ··· ··· ··· ३०८
१४१—गोकर्णका दिव्य देवियोंसे वार्तालाप तथा मथुरामे जाना ··· ··· ३०९
१४२—ब्राह्मण-प्रेत-संवाद, सङ्गम-महिमा तथा वामन-पूजाकी विधि ··· ··· ३१२
१४३—ब्राह्मण-कुमारीकी मुक्ति ··· ··· ३१४
...गम्बको शाप लगना और उनका सूर्याराधन व्रत ३१७
...त्युम्नका चरित्र, सेवापराध एवं ...थुरामाहात्म्य ···
...द्रसे अगस्तिका उद्धार, 'श्राद्ध-...पतीर्थ'की महिमा ···

१४७—काष्ठ-पाषाण प्रतिमाके निर्माण, प्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि ··· ··· ३२४
१४८—मृन्मयी एवं ताम्र-प्रतिमाओकी प्रतिष्ठा-विधि ··· ··· ··· ३२७
१४९—कॉस-प्रतिमा-स्थापनकी विधि ··· ३२९
१५०—रजत-स्वर्णप्रतिमाके स्थापन तथा शालग्राम और शिवलिङ्गकी पूजाका विधान ··· ३३०
१५१—सृष्टि और श्राद्धकी उत्पत्ति-कथा एवं पितृयज्ञका वर्णन ··· ··· ३३२
१५२—अशौच, पिण्डकल्प और श्राद्धकी उत्पत्तिका प्रकरण ··· ··· ··· ३३६
१५३—श्राद्धके दोष और उसकी रक्षाकी विधि ··· ३४१
१५४—श्राद्ध और पितृयज्ञकी विधि तथा दानका प्रकरण ··· ३४३
१५५—'मधुपर्क'की विधि और शान्तिपाठकी महिमा ··· ··· ··· ३४८
१५६—नचिकेताद्वारा यमपुरीकी यात्रा ··· ३५०
१५७—यमपुरीका वर्णन ··· ··· ३५२
१५८—यम-यातनाका स्वरूप ·· ··· ३५५
१५९—राक्षस-यमदूत-संघर्ष तथा नरकके क्लेश ··· ३५९
१६०—कर्मविपाक-निरूपण ··· ··· ३६०
१६१—दानधर्मका महत्त्व ··· ··· ३६२
१६२—पतिव्रतोपाख्यान ··· ··· ३६५
१६३—पतिव्रताके माहात्म्यका वर्णन ··· ३६८
१६४—कर्मविपाक एवं पापमुक्तिके उपाय ··· ३६९
१६५—पाप-नाशके उपायका वर्णन ··· ३७२
१६६—गोकर्णेश्वरका माहात्म्य ··· ··· ३७५
१६७—गोकर्णमाहात्म्य और नन्दिकेश्वरको वर-प्रदान ··· ··· ३७८
१६८—गोकर्णेश्वर तथा जलेश्वरके माहात्म्यका वर्णन ··· ··· ··· ३८२
१६९—'गोकर्णेश्वर' और 'शृङ्गेश्वर' आदिका माहात्म्य ··· ··· ··· ३८७
१७०—वराहपुराणकी फल-श्रुति ·· ··· ३८८

संo श्रीवराहपुराण समाप्त

निबन्ध

११—वराहपुराणके ग्रन्थ-परिमाणकी समस्या (श्री-आनन्दस्वरूपजी गुप्त, एम्०ए०, शास्त्री) ··· ३९०
१२—भगवान् वराहकी जय (महाकवि श्री-जयदेवजी) ··· ··· ३९४
१३—वराहपुराण—एक संक्षिप्त परिचय (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ··· ३९५
१४—श्रीवराहावतार-सदेह-निराकरण (पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, सारस्वत, शास्त्री, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति) ··· ४०८
१५—वेदोंमें भगवान् श्रीवराह (डा० श्रीशिव-शंकरजी अवस्थी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ··· ··· ४१०
१६—वराहपुराणमे भक्तियोग (श्रीरतनलालजी गुप्त) ··· ·· ··· ४१४
१७—उज्जयिनीकी वराह-प्रतिमाएँ (डा० श्रीसुरेन्द्रकुमारजी आर्य) ·· ··· ४१९
१८—वराहपुराणकी रूपरेखा (डॉ० श्रीरामदरशजी त्रिपाठी) ··· ··· ··· ४२१
१९—पुराणोंकी उपयोगिता तथा वराह-पुराणकी कतिपय विशेषताएँ (आचार्य पं० श्रीकाली-प्रसादजी मिश्र, विद्यावाचस्पति) ··· ४२३
२०—वराहपुराणान्तर्गत व्रजमण्डल (श्रीशंकर-लालजी गौड़, साहित्य-व्याकरण-शास्त्री) ·· ४२४
२१—वराहपुराणोक्त मथुरामण्डलके प्रमुख तीर्थ (श्रीश्यामसुन्दरजी श्रोत्रिय, 'अशान्त') ··· ४२६
२२—वराहपुराण-सकेतित वराहक्षेत्र—स्थिति और महत्त्व (प्रो० श्रीदेवेन्द्रजी व्यास) ·· ४३३
२३—आये कर गर्जना वराह भगवान् हैं [कविता] (पं० श्रीउमादत्तजी सारस्वत, 'दत्त' कविरत्न) ४३५
२४—वराह-महापुराणमे नेपाल (पं० श्रीसोमनाथजी शर्मा, घिमिरे, 'व्याल', साहित्याचार्य) ··· ४३६
२५—मध्यकालीन कवियोंकी दृष्टिमे भगवान् वराह (पं० श्रीललिताप्रसादजी शास्त्री) ··· ४३८
२६—पुराण-परिवेशमे वराहपुराण (आचार्य पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठी, एम्० ए०) ·· ४४०
२७—सक्षिप्त वराहकोश ··· ··· ४४५

२८–श्रीवराहपुराणकी अद्भुत विलक्षण महिमा [एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतजी महाराजके चेतावनीयुक्त महत्त्वपूर्ण सदुपदेश] (प्रेषक— भक्त श्रीरामशरणदासजी) ... ४४७
२९–भगवान् 'यज्ञ-वराहकी' पूजा एवं आराधन-विधि (पृष्ठ १६का शेष) ... ४४८
३०–सनकादिकृत भगवान् वराहकी स्तुति ... ४५२
३१–वराहपुराणोक्त मथुरामण्डलके प्रमुख तीर्थ (पृष्ठ ४३२का शेष) ... ४५४
३२–मथुराकी तात्त्विक महिमा ... ४६२
३३–भगवान् श्रीवराहका अवतार (पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार) ४६३
३४–सनातन आदि ऋषियोंद्वारा की गयी भगवान् श्रीवराहकी स्तुति ... ४६४
३५–भद्रमतिद्वारा भगवान् यज्ञ-वराहकी स्तुति ... ४६६
३६–पृथ्वीद्वारा भगवान् यज्ञ-वराहकी स्तुति ... ४६७
३७–दशावतारस्तोत्रम् ... ४६८
३८–दस अवतारोंकी जयन्ती तिथियाँ ... ४६९
३९–गो-वध-निषेध-विधि (कानून)का अभिनन्दन ... ४७०
४०–भूमिद्वारा भगवान् वराहकी स्तुति ... ४७०
४१–मङ्गल-कामना एवं शान्तिपाठ ... ४७१
४२–क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन ... ४७२

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

१–भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार ... (मुखपृष्ठ)
२–शेषशायी भगवान् नारायण ... १
३–श्रीवराहावतार ... १७
४–भगवान् मत्स्य ... ३७
५–महिषासुर-मर्दिनी १६३
६–कृष्णगङ्गा (यमुना)के तटपर श्रीश्यामा-श्याम २९३
७–रुद्रावतार भगवान् शिव ... ३८०
८–भगवान् विष्णु-वराहके दस अवतार ... ४६९

इकरंगे चित्र

नरकोंके दृश्य और उनके नाम—
१–सदंश ३५६
२–संतत ३५६
३–असिपत्रवन ३५६
४–कुम्भीपाक ३५६
५–रौरव ३५६
६–महारौरव ३५६
७–प्राणरोध ३५७
८–अवीचिमान ३५७
९–अयःपान ३५७
१०–सूकरमुख ३५७
११–शूलग्रह ३५७
१२–सूर्मि ३५७

रेखाचित्र

१–भगवान् विष्णुके वराहादि चार अवतार ... (प्रथम आवरण-पृष्ठ)

श्रीवराहपुराणकी प्रशस्ति

सर्वस्यापि च शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यताम्॥

सभी शास्त्रों और किसी भी कर्मके लिये आवश्यक है कि उसका प्रयोजन कहा जाय—ऐसा करनेपर ही उसकी उपादेयता होती है। यह वराहपुराण, महाप्रलयके जलौघसे उद्धृत माता पृथिवीसे भगवान् वराह-वपुधारी श्रीविष्णुके द्वारा प्रत्यक्षतः कथित होनेसे साक्षात् 'भगवत्-शास्त्र' है। इसकी महिमा अनूठी है। यहाँ प्रकृत पुराण (वराहपुराण)के २१७ वें अध्यायके १२वें श्लोकसे २४वें श्लोकतक मूल पाठ 'फल-श्रुति'के रूपमें पाठ करने हेतु दिया जा रहा है—

यश्चैव कीर्त्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भक्तितः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्। प्रभासे नैमिषारण्ये गङ्गाद्वारेऽथ पुष्करे॥
प्रयागे ब्रह्मतीर्थे च तीर्थे चामरकण्टके। यत्पुण्यफलमाप्नोति तत्कोटिगुणितं भवेत्॥
कपिलां द्विजमुख्याय सम्यग्दत्त्वा तु यत्फलम्। प्राप्नोति सकलं श्रुत्वा चाध्यायं तु न संशयः॥
श्रुत्वास्यैव दशाध्यायं शुचिर्भूत्वा समाहितः। अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः॥
यः पुनः सततं शृण्वन्नैरन्तर्येण बुद्धिमान्। पारयेत्परया भक्त्या तस्यापि शृणु यत्फलम्॥
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम्। सर्वतीर्थाभिषेकेन यत्फलं मुनिभिः स्मृतम्॥
तत्प्राप्नोति न संदेहो वराहवचनं यथा। य एतत्पारयेद् भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्॥
अपुत्रस्य भवेत्पुत्रः सपुत्रस्य सुपौत्रकः। यस्येदं लिखितं गेहे तिष्ठेत्सम्पूज्यते सदा॥
तस्य नारायणो देवः संतुष्टः स्याद्धि सर्वदा। यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः॥
श्रुत्वा तु पूजयेच्छास्त्रं यथा विष्णुं सनातनम्। गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः॥
यथाशक्ति नृपो ग्रामैः पूजयेच्च वसुन्धरे। श्रुत्वा तु पूजयेद्यः पौराणिकं नियतः शुचिः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्॥

शेषशायी भगवान् नारायण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
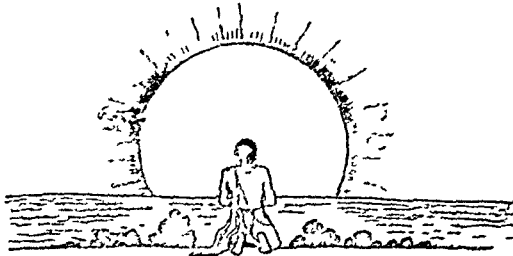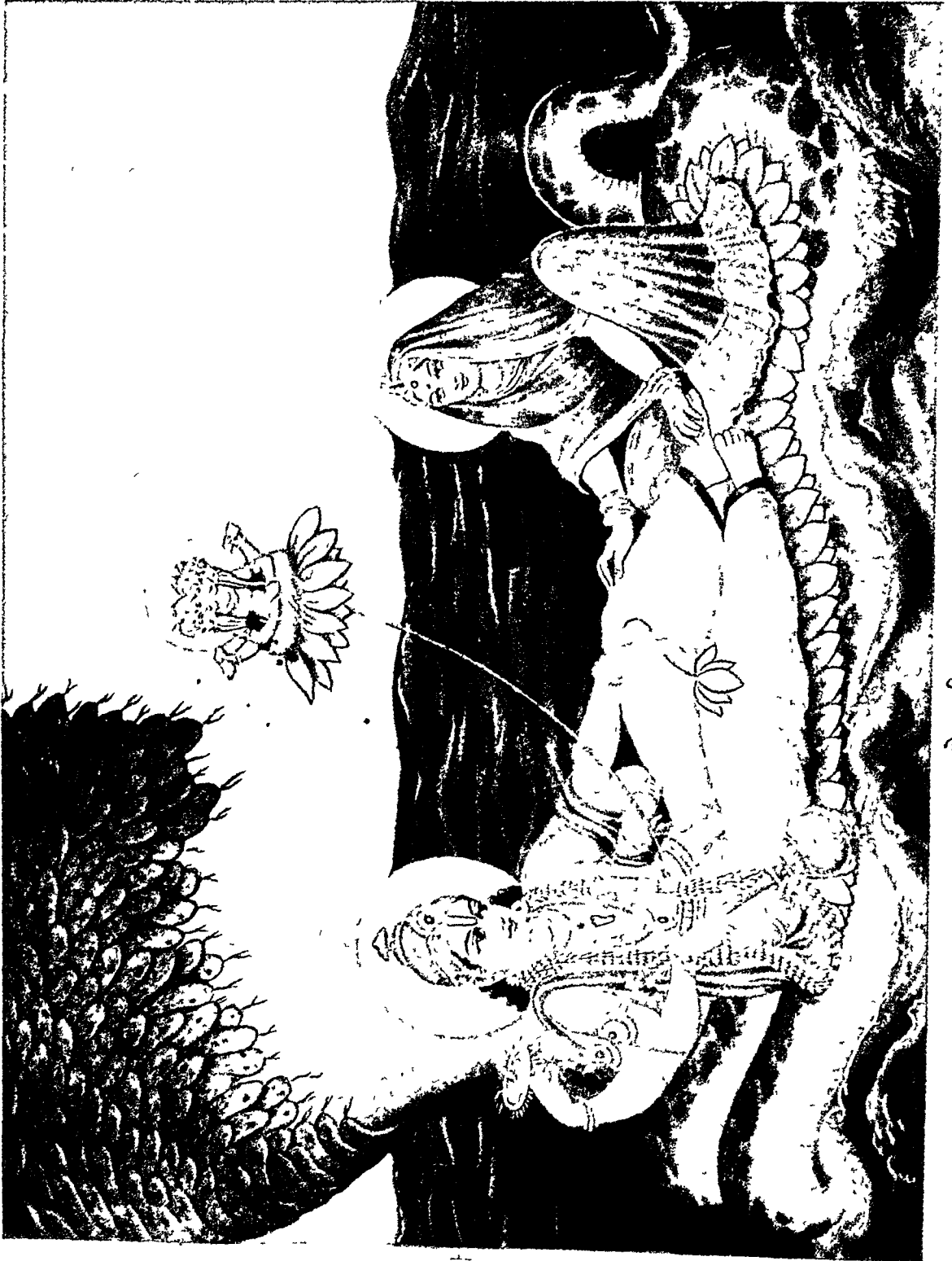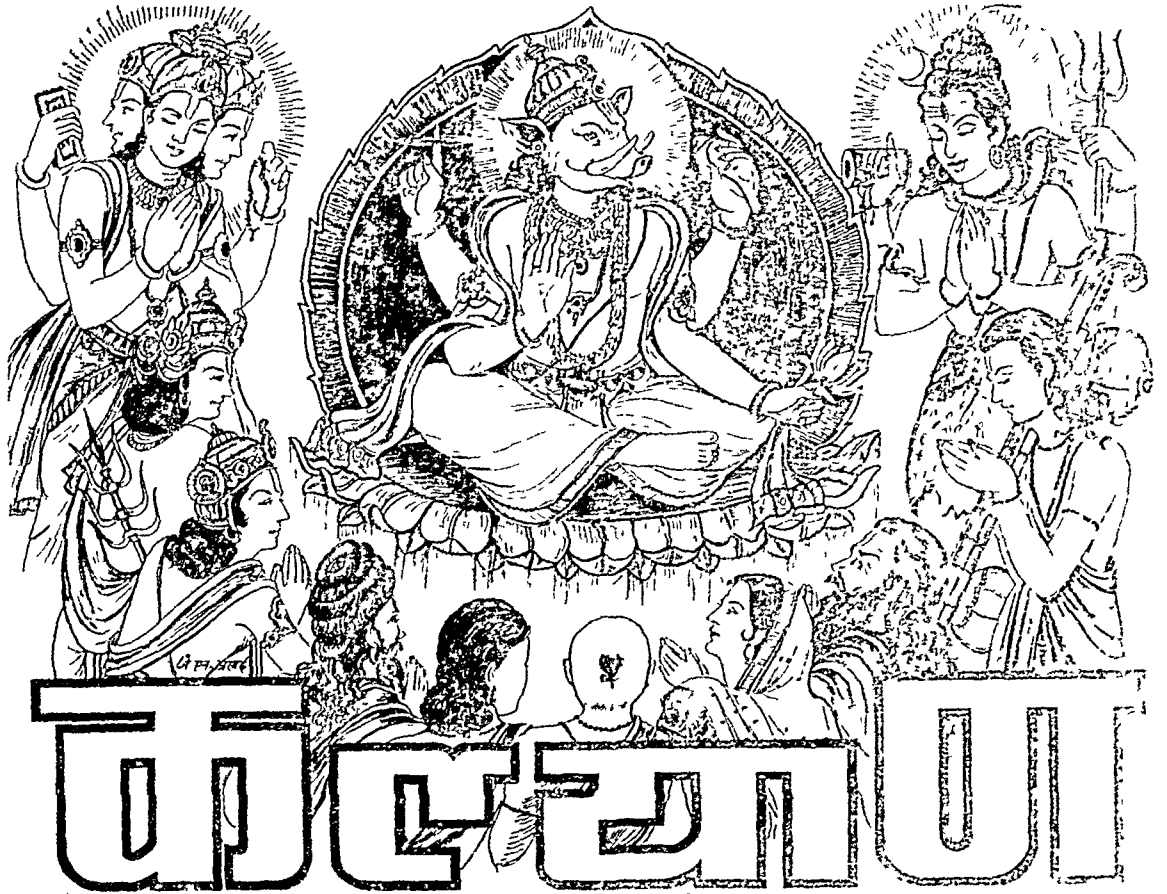
वेदा येन समुद्धृता वसुमती पृष्ठे धृताप्युद्धृता दैत्येशो नखरैर्हतः फणिपतेर्लोकं बलिः प्रापितः ।
क्ष्माऽक्षत्रा जगती दशास्यरहिता माता कृता रोहिणी हिंसा दोषवती धराप्ययवना पायात् स नारायणः ॥

वर्ष ५१ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०२, जनवरी १९७७ { संख्या १ पूर्ण संख्या ६०२

भगवान् वराह कामादि शत्रुओंको नष्ट करें

दंष्ट्राग्रेणोद्धृता गौरुदधिपरिवृता पर्वतैर्निम्नगाभिः
साकं मृत्पिण्डवत् प्राग्बृहदुरुवपुषानन्तरूपेण येन ।
सोऽयं कंसासुरारिर्मुरनरकदशास्यान्तकृत् सर्वसंस्थः
कृष्णो विष्णुः सुरेशो नुदतु मम रिपूनादिदेवो वराहः ॥

(वराहपुराण १ । २)

'जिन अनन्तरूप भगवान् विष्णुने प्राचीन कालमें समुद्रोंसे घिरी, वन-पर्वत एवं नदियोंसहित पृथ्वीको अपने अत्यन्त विशाल शरीरके द्वारा केवल दाढ़के अग्रभागपर मिट्टीके (छोटे-से) ढेलेकी भाँति उठा लिया था, वे कंस, मुर, नरक तथा रावण आदि असुरोंका अन्त करनेवाले कृष्ण एवं विष्णुरूपसे सबमें व्याप्त देवदेवेश्वर आदिदेव भगवान् वराह मेरी सभी बाधाओं (काम, क्रोध, लोभ आदि आध्यात्मिक शत्रुओं) को नष्ट करें (तथा विश्वका परम मङ्गल करें) ।'

वेद-पुराणोंमें भगवान् श्रीयज्ञ-वराहका स्तवन

एकदंष्ट्राय विद्महे महावराहाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥

हम एक दाढवाले महाविराट्‌रूपी भगवान् विष्णुका ध्यान-स्मरण करते हैं, वे हमारी बुद्धिको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करें।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्मवर्म छर्दिरस्मभ्य यंसत् ॥

(ऋक्० १ । ११४ । ५)

श्रेष्ठ आहारसे सम्पन्न अथवा वराहके सदृश दृढ अङ्गोंवाले, सूर्यके सदृश प्रकाशमान, जटाओंसे युक्त, तेजस्वी रूपवाले वराह-विष्णुको हवि देकर अथवा नमनद्वारा हम द्युलोकसे यहाँ आनेके लिये आह्वान करते हैं । वे अपने हाथमें वरणीय ओषधियोंको लिये हुए हमारे लिये आरोग्य, रूप, सुख, रक्षा, कवच और आवास प्रदान करें ।

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥

(श्रीमद्भा० ३ । १३ । ३४)

(ऋषिगण कहते हैं—) भगवान् अजित ! आपकी जय हो ! जय हो !! यज्ञपते ! आप अपने वेदत्रयीरूप विग्रहको फटकार रहे हैं, आपको नमस्कार है । आपके रोम-कूपोंमे सम्पूर्ण यज्ञ लीन है । आपने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ही यह सूकररूप धारण किया है, आपको नमस्कार है ।

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥

(श्रीमद्भा० ३ । १३ । ३९)

समस्त मन्त्र-देवता, द्रव्य-यज्ञ और कर्म आपके ही स्वरूप हैं, आपको हमारा नमस्कार है । वैराग्य, भक्ति और मनकी एकाग्रतासे जिस ज्ञानका अनुभव होता है, वह आपका स्वरूप ही है तथा आप ही सबके विद्यागुरु हैं, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है ।

जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक् ।
प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत् परमं च यत्पदम् ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ४ । ३१)

हे ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर ! हे केशव ! हे शङ्ख-गदाधर ! हे खड्ग-चक्रधारी प्रभो ! आपकी जय हो ! आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं तथा आप ही ईश्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं, वह भी आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे ।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ४ । ३२)

हे यूपरूपी दाढोंवाले प्रभो ! आप ही यज्ञपुरुष हैं, आपके चरणोंमे चारों वेद हैं, दाँतोंमे यज्ञ हैं, मुखमें (श्येन, चित आदि) चितियाँ हैं । हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं ।

स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसंधे ।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन् भगवन् प्रसीद ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ४ । ३४)

'प्रभो ! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर (यज्ञ) है तथा सत्र शरीरकी संधियाँ । देव ! इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं । हे नित्यस्वरूप भगवन् ! आप प्रसन्न होइये ।'

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महानृसिंहाय चतुर्भुजाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥
(हरिवंश०, भविष्यपर्व ३४ । १८)

(भगवान् वराहसे पृथ्वी कहती है—) जो तीनों लोकोंको अपने चरणोंमें आक्रान्त कर लेनेके कारण 'त्रिविक्रम' कहलाते हैं, जिनके पराक्रमका कोई माप नहीं है तथा जो अपने हाथोंमें शार्ङ्ग-धनुष, सुदर्शनचक्र, नन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा धारण करते हैं, उन महानृसिंहस्वरूप, चार भुजाधारी पुरुषोत्तम भगवान् 'वराह'को मेरा नमस्कार है ।

कल्याणमङ्कुरति यस्य कटाक्षलेशाद्यस्य प्रिया वसुमती सवनं यदङ्गम् ।
अस्मद्गुरोः कुलधनं चरणौ यदीयौ भूयः शुभं दिशतु भूमिवराह एषः ॥
(श्रीवेङ्कटाध्वरिकृत वराहाष्टक ६)

जिनकी कृपा-दृष्टिके लेशसे भी परम कल्याणका प्रादुर्भाव हो जाता है, धन-धान्यमयी भगवती पृथ्वी जिनकी पत्नी हैं और सवन (सोमरस निकालना तथा उससे हवन करना) यज्ञादि जिनके अङ्ग हैं और जिनके दोनों चरण ही हमारे गुरुको परम्परासे प्राप्त धन हैं, वे भगवान् भूमिवराह अनन्त कल्याण करें ।

पातु त्रीणि जगन्ति संततमकूपारात् समभ्युद्धरन्
धात्रीं कोलकलेवरः स भगवान् यस्यैकदंष्ट्राङ्कुरे ।
कूर्मः कन्दति नालति द्विरसनः पत्रन्ति दिग्दन्तिनो
मेरुः कोशति मेदिनी जलजति व्योमापि रोलम्बति ॥
(शार्ङ्गधरपद्धति ४०१७)

प्रलयके अगाध समुद्रसे अपनी दाढ़के अग्रभागपर रखकर पृथ्वीका उद्धार करते हुए वे वराह-विग्रहधारी भगवान् तीनों लोकोंकी रक्षा करें, जिनकी इस लीलाके समय कच्छप कमल-कन्दके समान, शेषनाग कमल-दण्ड (नाल)के समान, दिग्गज पत्तोंके समान, सुमेरुपर्वत कमल-कर्णिका-कोशके समान, भूमण्डल कमल-पुष्पके समान और आकाश उसपर मँडरानेवाले भौंरेके समान चक्कर खा रहा था ।

पातु श्रीस्तनपत्रभङ्गमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थलो
देवो सर्वजगत्पतिर्मधुवधूवक्त्राब्जचन्द्रोदयः ।
क्रीडाक्रोडतनोर्नवेन्दुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भू-
र्भाति स प्रलयाब्धिपल्वलतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः ॥
(महानाटक १ । ९, हनुमन्नाटक १ । २*)

मधु दैत्यके संहारद्वारा उसकी स्त्रियोंके मुखकमल (को मलिन करने)के लिये चन्द्रोदयके तुल्य एवं भगवती श्रीलक्ष्मीजीके स्तनपर विरचित मकरके आकारकी चन्दनादिकी पत्रिकाकी मुद्रासे चिह्नित हृदयस्थलवाले वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु विश्वकी रक्षा करें—जिन लीलापूर्वक वराह-शरीर धारण करनेपर उनके द्वितीयाके नवीन चन्द्रके आकारवाली दाढ़के अग्रभागपर स्थित प्रलयकालीन अगाध सागरके अन्तस्तलसे उद्धृत पृथ्वी नागरमोथाके समान (लघु) प्रतीत हो रही थीं ।

---

* यह श्लोक 'सदुक्तिकर्णामृत'के पृष्ठ ५१ पर किन्हीं 'नग्न' कविके नामसे भी संगृहीत है—'कुवलयानन्द-चन्द्रिका' तथा 'चित्रमीमांसा'के अनुसार इसमें 'परम्परित-रूपकालंकार' है ।

पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत)

पुराण भारतका सच्चा इतिहास है। पुराणोंमें ही भारतीय जीवनका आदर्श, भारतकी सभ्यता, संस्कृति तथा भारतके विद्या-वैभवके उत्कर्षका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीयताकी झाँकी, प्राचीन समयमें भारतके सर्वविध उत्कर्षकी झलक यदि कहीं प्राप्त होती है तो पुराणोंमें। पुराण इस अकाट्य सत्यके द्योतक हैं कि भारत आदि-जगद्गुरु था और भारतीय ही प्राचीन कालमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुँचे थे। पुराण न केवल इतिहास हैं, अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी त्रिविध उन्नतिका मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

कालान्तरके पश्चात् भारतमें दासताका युग आया। भारतकी संस्कृतिपर बारबार घातक विदेशी आक्रमण हुए। वेद-पुराणोंका पठन-पाठन न होनेसे यहाँ अज्ञानान्धकार छा गया। परिणाम यह हुआ कि विदेशी प्रकाशके सहारेसे पुराण तो 'मिथ'—मिथ्या ही समझे जाने लगे। लोगोंकी श्रद्धा उनपरसे हटने लगी और निजज्ञान-विहीन भारत इतस्ततः भटकने लगा। भारतीय जन-समुदाय अपनी सभ्यता और संस्कृति, अपने धर्म और उत्कर्ष आदिको भूलकर मूढ़ बालककी भाँति पाश्चात्य एवं अन्य विदेशी भौतिक चाकचिक्यसे चकित होने लगा। अब पाश्चात्य जगत् यदि किसी बातका आविष्कार कर पाता है तो संसारको पौराणिक बातोंकी सत्यताकी प्रतीति और पुष्टि होती है। परंतु ये सब भौतिक आविष्कार हैं।

निरी भौतिक उन्नतिका परिणाम कितना भयंकर होता है, यह विगत विश्वव्यापी युद्धोंसे स्पष्ट सिद्ध हुआ है। त्रिविध उन्नति ही विश्व-कल्याणकारिणी हो सकती है। पुराणोंद्वारा ही हमें त्रिविध उन्नतिका मार्ग मिल सकता है। अतएव अपने परिवारके, अपनी जातिके, अपने देशके तथा विश्वके कल्याणके लिये भूत-भविष्यके ज्ञानके लिये पुराणोंका पठन-पाठन नितान्त आवश्यक है। विश्व-कल्याणके लिये श्रीभगवान् भारतीयोंको कल्याण-पथ-प्रदर्शक पुराणोंके प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति प्रदान करें, यही उनसे प्रार्थना है।

भगवान् यज्ञवराह

(पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

स जयति महावराहो जलनिधिजठरे चिरं निमग्नोऽपि।
येनान्त्रैरिव सह फणिगणैर्बलादुद्धृता धरणी ॥

'उन वराह भगवान्‌की जय हो, जिन्होंने समुद्रके अन्तस्तलमें चिरमग्न रहनेपर भी उस (समुद्र)की आँतोंके समान साँपोंके साथ बलपूर्वक पृथ्वीको उसमेंसे ऊपर निकाल लिया था ।'

इदानीतन प्राप्त वेदोंकी शाखाओंमें यद्यपि भगवान्‌के अन्य अवतारोंके भी सुस्पष्ट मूल प्राप्त हैं, तथापि इनमें वामन एवं वराह-अवतारोंका विशेष वर्णन उपलब्ध होता है । पर यदि 'यज्ञपुरुष'को जिन्हें भागवत ३।१३, विष्णुपुराण १।४ आदिमें 'यज्ञवराह' कहा गया है, वराह-अवतारमें सम्मिलित कर लें तो वह निःसंदेह अपरिमित संख्याको प्राप्त होगा । वैसे **'अनन्ता वै वेदाः', 'यज्ञो हं वै विष्णुः,' 'एवं बहुविधा यज्ञाः वितता ब्रह्मणो मुखे,' 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि'** (ऋक् १।१५४।१) **'कतमोऽर्हति यः पार्थिवानि कविर्विममे रजांसि'** इत्यादिसे गणना कठिन ही है ।

यद्यपि 'निरुक्त' निघण्टु ४।१।१०, नैगमकाण्ड ५।१।४ आदिमें 'वराह'शब्दके शिव, मेघ, सूकर, एक राक्षस आदि भी अर्थ हैं, तथापि ऋक् १०।९९।६, तैत्ति० स० ७।१।५, कौथुमसंहिता १।५२४ आदि, तै० ब्राह्मण १।१।१३, तै० आरण्यक १०, मैत्रायणीय १।६।३ आदिमें 'वराहावतार'का सुस्पष्ट उल्लेख है । विष्णुपुराण १।४, भागवत १।३, २।७, ३।१३, ५।१६, नरसिंहपु० ३९, महाभारत, मत्स्यपुराण ४७। ४७, वायुपुराण ६।१—३७ तथा मार्कण्डेयपु० ८८।८ आदिके **'यज्ञवराहमतुलं'** आदिमें यज्ञावतार भगवान् वराह-विष्णुका सुस्पष्ट उल्लेख तथा रमणीय चरित्र प्राप्त होता है। इनकी मुख्य कथा यह है कि सनकादिके शापसे विजय ही दितिके गर्भसे हिरण्याक्षरूपमें उत्पन्न हुआ और वह जनमते ही विशाल राक्षसके रूपमें परिणत हो गया। कुछ दिनों बाद वह पृथ्वीको चुराकर पातालमें ले गया। स्वायम्भुवमनुका जब ब्रह्माजीने प्रजापालक 'आदिराज'के पदपर अभिषेक किया तो उन्होंने अपनी प्रजाके निवासके योग्य भूमि माँगी, साथ ही पृथ्वीके पातालमें जानेका भी संकेत किया । इसपर निरुपाय ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुका ध्यान किया । थोड़ी ही देर बाद उनके नासा-विवरसे एक श्वेत वर्णका वराहशिशु प्रकट हुआ, जो देखते-ही-देखते 'ऐरावत' हाथीके आकारका बन गया । ब्रह्माजी उसे देखकर स्वयं आश्चर्यमें पड़ गये, फिर उन्होंने बोधात्मिका बुद्धिद्वारा निश्चय किया कि 'ये मङ्गलमय भगवान् 'यज्ञवराह-विष्णु' ही हैं ।'

अब पृथ्वीके उद्धारके लिये 'यज्ञ-पुरुष'ने अपनी लीला फैलायी । वे अपनी पूँछ उठाकर गर्दनके केसरोंसे तथा पैरके आघातोंसे मेघोंको विदीर्ण करते हुए घ्राण-शक्तिद्वारा पृथ्वीका अन्वेषण करने लगे । फिर उन्होंने समुद्रके जलमें प्रवेश किया और रसातलमें पहुँचकर पृथ्वीको देखा । पृथ्वीने उन्हें देखकर पूर्वकल्पानुसार अपने पुनरुद्धारकी प्रार्थना की—

मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वत्तोऽहं पूर्वमुत्थिता ॥
(विष्णुपुराण १।४।१२)

पृथ्वीकी प्रार्थनापर भगवान् यज्ञ-वराहने उसे अपनी दाढ़पर उठा लिया । इसपर हिरण्याक्षने युद्धद्वारा बाधा उत्पन्न की । भगवान्‌ने उसका वधकर पृथ्वीको यथास्थान लाकर स्थित किया । इसके बादकी कथा वराहपुराणमें है। जहाँ श्रीभगवान् पृथ्वीको लेकर समुद्रसे बाहर होकर प्रकट हुए वह भारतभूमिका 'वराह-क्षेत्र' कहलाया ।

उस समय ऋषियोंने उनके यज्ञरूपकी स्तुति करते हुए बतलाया था कि उनका थूथना (मुखका अग्रभाग) ही स्रुक् है, नासिकाछिद्र स्रुवा है, उदर ही इडा (यज्ञीय भक्षणपात्र) है, कर्ण ही चमस (सोमरस पान-पात्र) है,

मुख ही प्राशित्र (ब्रह्मभागपात्र) है और कण्ठछिद्र ही ग्रह (सोमपात्र) है। तदनुसार भगवान् वराहका चबाना ही अग्निहोत्र है, उसका बार-बार अवतार लेना ही यज्ञोंकी दीक्षा है, उनकी (गर्दन) उपसद (तीन इष्टियाँ) है, दोनों दाढ़ें प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) और उदयनीय (यज्ञसमाप्तिकी इष्टि) हैं, जिह्वा प्रवर्ग्य (प्रत्येक 'उपसद'के पूर्व किया जानेवाला 'महावीर' नामक कर्म) है, सिर सभ्य (होमरहित अग्नि) और आवसथ्य (उपासना-सम्बन्धी अग्नि) है तथा प्राण चिति (इष्टकाचयन) हैं। सोमरस भगवान् वराहका वीर्य है, प्रातःसवनादि—तीनों सवन उनका आसन (बैठना) हैं; अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम* नामकी सात संस्थाएँ ही उनके शरीरकी सात धातुएँ हैं तथा सम्पूर्ण सत्र उनके शरीरकी संधियाँ (जोड़) हैं। इस प्रकार वे सम्पूर्ण यज्ञ (सोमरहित याग) और क्रतु (सोमसहित याग) रूप हैं। यज्ञानुष्ठानरूप इष्टियाँ आपके अङ्गोंको मिलाये रखनेवाली मांसपेशियाँ हैं। हरिवंशके, भविष्य-पर्वके ३३से ४० अध्यायोंमें भी 'वराहचरित्र'का वर्णन है। उसके अनुसार सृष्टिके आरम्भमें जब समुद्रकी जलराशिमें सारी दिशाओंको आप्लावितकर अन्तरिक्षतक पहुँच गयी और उस जलके प्रपतनसे अनेक पर्वतोंकी उत्पत्तिद्वारा पृथ्वी अवरुद्ध तथा पीडित होकर पातालमें प्रविष्ट होने लगी तो उसकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णुने वराहका रूप धारण किया, जो दस योजन विस्तृत और सौ योजन ऊँचा था—

जलक्रीडारुचिस्तस्माद् वाराहं रूपमस्मरत्।
दशयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं शतयोजनम्॥
(हरि० ३। ३४। २९-३०)

उस समय उनका तेज विद्युत्, अग्नि एवं सूर्यके तुल्य था। चारों वेद उनके पैर, यूप उनकी दाढ़, क्रतु दाँत, चिति (इष्टिकाओंका चयन) उनका मुख तथा कुश ही उनके रोएँ थे। 'उपाकर्म' उनका ओष्ठ-भूषण तथा 'प्रवर्ग्य' उनकी नासिका आभरण था। जलमें प्रविष्ट होकर पातालतक पहुँचकर उन्होंने पृथ्वीको अपनी दाढ़से ऊपर उठाया और पुनः उसे उसी जलके ऊपर लाकर नौकाके समान स्थित किया। फिर उसपर सुवर्ण-मय मेरुकी स्थापनाकर, सौमनस् आदि अनेक पर्वतोंका निर्माण कराया तथा उन्हें वृक्षों, ओषधि, लताओंसे सुशोभित कर अनेक पवित्र नद-नदियोंकी सृष्टि एवं जलाशयोंकी, यथा यज्ञो, विविध जन्तुओं एवं प्रजाका विस्तार किया। 'वायुपुराण' ९७। ६४ से ९९ तकके अध्यायोंमें भगवान् विष्णुके ७७ अवतारोंकी चर्चा है। इसमें 'वराह'नामके एक 'महादेवासुरसंग्राम'का भी उल्लेख है, जिसके अन्तर्गत १२ 'उपसंग्राम' हुए थे। तन्त्रग्रन्थोंमें वराहके लिये 'वार्त' तथा वराहीके लिये 'वार्ताली' शब्द भी आते हैं। यहाँ भी अध्याय ९७, श्लोक ७६में 'वार्त' नामक युद्धका भी उल्लेख है।

हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे संग्रामेष्वपराजितः।
दंष्ट्रायां तु वराहेण समुद्रान्निर्धृतश्च कृता।
प्राह्लादिर्निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने।

(वायुपुराण, ९७। ७८-७९) आदिसे 'हिरण्यकशिपु'के युद्धका भी प्रायः एक साथ ही उल्लेख है। 'वायुपुराण'के ६ठे अध्यायमें तथा 'कालिकापुराण'में 'वराहावतार'की एक दूसरी कथा भी वर्णित है। तथापि वह श्लोक १से ३५ तक हरिवंश-कथाका ही संक्षिप्त रूप है और इसमें भी उनके 'यज्ञरूप'का ही विस्तृत वर्णन है।

---

* इन पारिभाषिक शब्दोंकी परिभाषा 'श्रौत-कोशों'में देखना चाहिये।

शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य

(लेखक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हमारे शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।* जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'**पुराणं शृणुयान्नित्यम्।**' पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१। २। ९-१०)

'धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, अथवा श्रीभगवान्‌की प्राप्ति। धर्मसे यदि किसीने कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो इसमें उस धर्मकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका एकमात्र फल है—धर्मका अनुष्ठान, वह न करके यदि किसीने धर्मसे कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई सच्चे लाभकी बात नहीं हुई। शास्त्रोंने कामको भी पुरुषार्थ माना है। पर उस पुरुषार्थका अर्थ इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है। जितने सोने-खाने आदिसे हमारा जीवन-निर्वाह हो जाय, उतना आराम ही यहाँ 'काम' पुरुषार्थसे अभिप्रेत है। तथा जीवननिर्वाहका—जीवित रहनेका भी फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको—भगवत्तत्त्व-को जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।' वस्तुतः सारे साधनोंका फल है—भगवान्‌की प्रसन्नताको प्राप्त करना। और वह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। 'पद्मपुराण'में कहा गया है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२। ६२)

'इसलिये यदि भगवान्‌को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्ग-भूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ बहुत आदर है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं और उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। इसी दृष्टिसे पद्मपुराणमें कहा गया है—'**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—'**शतकोटिप्रविस्तरम्।**' उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपमें अवतीर्ण होते हैं और

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२। ६०-६१)

उन्हें अठारह भागोमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमे सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमे आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है।* इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं; अपितु वे उसके संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है—

'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'

(छान्दोग्य उपनिषद् ७ । १ । २)

उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद'की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही है। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हे वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमे लिखा है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥

(सृष्टि० २ । ५०।५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमे वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रिया-पदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है,—वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामे पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों) मे विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकोंकी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

---

* कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो विभुः। व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ। तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्। (पद्म० सृष्टि० १ । ५१-५३)

भारतीय संस्कृतिमें पुराणोंका महत्त्वपूर्ण स्थान

(लेखक—नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

वस्तुतः हमारा 'पुराण-साहित्य' बड़े महत्त्वका है। यह सम्भव है कि उसमे समय-समयपर यत्किंचित् परिवर्तन-परिवर्द्धन किया गया हो, परंतु मूलतः तो ये भी वेदोंकी भाँति भगवान्के निःश्वासरूप ही हैं। 'शतपथ'-ब्राह्मणमें आता है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।*

(शतपथ १४। २। ४। १०)

'गीले काठद्वारा उत्पन्न अग्निसे जिस प्रकार पृथक् धुआँ निकलता है, उसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस (अथर्ववेद), इतिहास, पुराण, विद्याएँ, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद हैं—वे सब महान् परमात्माके ही निःश्वास हैं।' अर्थात् बिना ही प्रयत्नके परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं—

'अप्रयत्नेनैव पुरुषनिःश्वासो भवत्येवम्'

(शांकरभाष्य)

वेदोंकी संहिताओं, ब्राह्मण-आरण्यक और उपनिषदोंमें भगवान् विष्णु, शिव आदिके मत्स्य, कूर्म, वराहादि विभिन्न अवतारोंके तथा पुराणवर्णित अनेकों कथाओंके प्रसङ्ग आये हैं।

'अथर्ववेद'में आया है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥

(११। ७। २४)

'यज्ञसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।'

छान्दोग्योपनिषद्मे नारदजीने भी सनत्कुमारसे कहा है—

'स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'—(७। १। १-२)

'मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चौथे अथर्ववेद और पाँचवें वेद इतिहास-पुराणको जानता हूँ।'

मनु महाराजने तो पुराणकी मङ्गलमयताको जानकर आज्ञा ही दी है—

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च॥

(३। २३२)

'श्राद्धादि पितृकार्योंमें वेद, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास, पुराण और उनके परिशिष्ट भाग सुनाने चाहिये।'

ब्रह्माण्डपुराणके प्रक्रियापादमे 'पुराण' शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की गयी है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत् पुराणं संविद्यात् नैव स स्याद्विचक्षणः॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड २। ११। ५०, शिवपुराण, वायवीय-संहिता १। ४०, वायुपुराण १। २०१)

यस्मात् पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(वायुपुराण, अध्याय १। २०२)

'अङ्ग और उपनिषद्के सहित चारों वेदोंका अध्ययन करके भी यदि पुराणको नहीं जाना गया तो ब्राह्मण

* बृहदारण्यक-उपनिषद् २।४। १०में भी यह ज्यों-का-त्यों है।

विचक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि इतिहास-पुराणके द्वारा ही वेदकी पुष्टि करनी चाहिये । यही नहीं, पुराण-ज्ञानसे रहित अल्पज्ञसे वेद डरते रहते हैं, क्योकि ऐसे व्यक्तिके द्वारा ही वेदका अपमान हुआ करता है। अत्यन्त प्राचीन तथा वेदको स्पष्ट करनेवाला होनेसे ही इसका नाम 'पुराण' हुआ है । पुराणकी इस व्युत्पत्तिको जो जानता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ।'

पुराणोंकी अनादिता तथा प्राचीनताके विषयमें उन्हींमें एक यह मार्मिक वचन भी प्राप्त होता है, जो श्रद्धालुओंके लिये नितान्त हितकर है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

(वायुपुराण १ । ६०, ब्रह्माण्डपुराण, शिवपुराण,-वायवीयसंहिता १ । ३१-३२)

'ब्रह्माजीने शास्त्रोंमें सबसे पहले पुराणोंको ही 'सुप्त-प्रतिबुद्ध-न्याय'से स्मरण किया, बादमें उनके चारों मुँहसे चारों वेद प्रकट हुए ।'

इस प्रकार पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता तथा मङ्गलमयताका स्थल-स्थलपर उल्लेख है और वह सर्वथा सिद्ध एवं यथार्थ है । भगवान् व्यासदेवने इन प्राचीनतम पुराणोका ही प्रकाश और प्रचार किया है । वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य हैं । पुराणोंकी कथाओमे कई असम्भव-सी दीखनेवाली तथा कई परस्परविरोधी-सी बातें और भगवान् तथा देवताओंके साक्षात् मिलने आदिके प्रसङ्गोंको देखकर स्वल्प श्रद्धा-वाले पुरुष उन्हें काल्पनिक मानने लगते हैं, परंतु यथार्थमे बात ऐसी नहीं है । इनमे कुछ एकपर यहाँ संक्षेपसे विचार किया जाता है ।

(१) जबतक वायुयानका निर्माण नहीं हुआ था, तबतक पुराणेतिहासोमें वर्णित विमानोंके वर्णनको बहुत-से लोग असम्भव मानते थे । पर अब जब हमारी आँखोंके सामने आकाशमें विमान उड़ रहे हैं, तब वैसी बात नहीं रही । मान लीजिये आजके ये रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन आदि यन्त्र नष्ट हो जायँ और कुछ शताब्दियोके बाद ग्रन्थोंमे इनका वर्णन पढ़नेको मिले तो उस समयके लोग यही कहेगे कि यह सारी कपोलकल्पना है । भला, हजारों कोसोंकी बात उसी क्षण वैसी-की-वैसी सुनायी देना, आवाजका पहचाना जाना और उसमें आकृति भी दीख जाना कैसे सम्भव है ? हमारे ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदिको तथा व्यास-संजय-धृतराष्ट्रके संवादोंको भी पहले लोग असम्भव मानते थे, पर अब विद्युत् एवं परमाणुबमकी शक्ति देखकर वे ही इनपर विश्वास करने लगे हैं । पुराणवर्णित सभी असम्भव बातें ऐसी ही हैं, जो हमारे सामने न होनेके कारण असम्भव-सी दीखती हैं ।

(२) परस्परविरोधी प्रसङ्ग कल्पभेदको लेकर हैं । पुराणोंके सृष्टितत्त्वको जाननेवाले लोग इस बातको सहज ही समझ सकते हैं ।

(३) लोग देवताओंके मिलनेकी बातको भी अतिरञ्जित मानते हैं, पर यह भी असम्भव नहीं है । प्राचीन कालके उन भक्तिपूत योगी, तपस्वी, ऋषि-मुनियोमें ऐसी महान् सात्त्विकी शक्ति थी कि उनमेंसे कई तो समस्त लोकोमें निर्बाध यातायात करते थे और दिव्यलोक, देवलोक, असुरलोक और पितृ-लोककी व्यवस्था और घटनाओको वहाँ जाकर प्रत्यक्ष देखते थे । वे देवताओंसे मिलते थे और अपने तपोमय प्रेमाकर्षणसे देवताओंको—यहाँतक कि भगवान्को भी अपने यहाँ बुलाकर प्रकट कर लेते थे । पुराणोंकी ऐसी बातें उन ऋषि-मुनियोंने स्वयं प्रत्यक्ष की थीं । अद्वैतवेदान्तके महान् आचार्य भगवान् शंकरने अपने प्रसिद्ध 'शारीरक'भाष्यमें लिखा है—

'इतिहासपुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण सम्भवन् मन्त्रार्थवादमूलत्वात् प्रभवति देवताविग्रहादि साधयितुम्। प्रत्यक्षादिमूलमपि सम्भवति। भवति ह्यस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरंतनानां प्रत्यक्षम्। तथा च व्यासादयो देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते। यस्तु ब्रूयादिदानींतनानामिव पूर्वेषामपि नास्ति देवादिभिर्व्यवहर्तुं सामर्थ्यमिति, स जगद्वैचित्र्यं प्रतिषेधेत्। इदानीमिव च नान्यदापि सार्वभौमः क्षत्रियोऽस्तीति ब्रूयात्। ततश्च राजसूयादिचोदनोपरुन्ध्यात्। इदानीमिव च कालान्तरेऽप्यव्यवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रतिजानीत; ततश्च व्यवस्थाविधायि शास्त्रमनर्थकं स्यात्। तस्माद् धर्मोत्कर्षवशाच्चिरंतना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते।' ......। (ब्रह्मसूत्र १। ३। ३३का शांकरभाष्य)

"इतिहास और पुराण भी मन्त्र-मूलक तथा अर्थवाद-मूलक होनेके कारण प्रमाण ही हैं, अतः उपर्युक्त रीतिसे ये देवता-विग्रह आदिके सिद्ध करनेमें समर्थ होते हैं। देवताओंका प्रत्यक्ष आदि भी सम्भव है। इस समय हमें जो प्रत्यक्ष नहीं होते, प्राचीन लोगोंको वे प्रत्यक्ष होते थे, जैसे व्यासादि मुनियोंके देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहारकी बात स्मृतिमें मिलती है। आजकलकी ही भाँति प्राचीन पुरुष भी देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करनेमें असमर्थ थे, यह कहनेवाला तो मानो जगत्‌की विचित्रताका ही प्रतिषेध करना चाहता है। वह तो यह भी कह सकता है कि—'आजकलके ही समान पूर्व समयमें भी सार्वभौम क्षत्रियोंकी सत्ता न थी' पर ऐसा कहनेपर तो फिर 'राजसूय' आदि विधिका भी बाध हो जायगा और ऐसा मानना पडेगा कि 'आजकलके समान ही पूर्व समयमे भी वर्णाश्रमधर्म अव्यवस्थित ही था।' तब तो इसकी व्यवस्था करनेवाले सारे शास्त्र ही व्यर्थ हो जायँगे। अतएव यह सिद्ध है कि धर्मके उत्कर्षके कारण प्राचीन लोग देवताओ आदिके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे।"

इससे सिद्ध है कि पुराणवर्णित प्रसङ्ग काल्पनिक नही है, बल्कि वे सर्वथा सत्य ही है। यह बात अवश्य है कि हमारे ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें ऐसे चमत्कारपूर्ण प्रसङ्ग हैं कि जिनके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों ही अर्थ लिये जा सकते हैं। इसलिये जो लोग इनका आध्यात्मिक अर्थ करते है वे भी अपनी दृष्टिसे ठीक ही करते हैं। पुराणोंमें कहीं-कहीं ऐसी बातें भी हैं, जो घृणित मालूम देती हैं। इसका कारण यह है कि इनमें कुछ प्रसङ्ग तो ऐसे है, जिनमें किसी निगूढ़ तत्त्वका विवेचन करनेके लिये आलंकारिक भाषाका प्रयोग किया गया है। उन्हें समझनेके लिये भगवत्कृपा, सात्त्विकी श्रद्धा और गुरु-परम्परासे अध्ययनकी आवश्यकता है। कुछ ऐसी बातें हैं, जो सच्चा इतिहास हैं। बुरी बात होनेपर भी सत्यके प्रकाश करनेकी दृष्टिसे उन्हें ज्यों-का-त्यो लिख दिया गया है। इसका कारण यह है कि हमारे वे पुराणवक्ता ऋषि-मुनि आजकलके इतिहासलेखकोंकी भाँति राजनैतिक दलगत, देशगत और जातिगत आग्रहके मोहसे मिथ्याको सत्य बनाकर लिखना पाप समझते थे। वे सत्यवादी, सत्याग्रही और सत्यके प्रकाशक थे।

अब एक बात और है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह कि विभिन्न पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत आदिका महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराईसे न देखनेपर यह बात अवश्य बेतुकी-सी प्रतीत होती है, परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न विचित्र लीला-व्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विचित्र रूपोमें नित्य प्रकट है। भगवान्‌के ये सभी रूप

नित्य, पूर्णतम और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं । अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमें-से समस्त रूपमय एकमात्र भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप परिपूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोमे एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतोंके सम्बन्धमे भी यही बात है । अतएव श्रद्धा और निष्ठाकी दृष्टिसे साधकके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसको सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्सत्ताकी दृष्टिसे तो सत्य है ही ।

स्कन्द, वामन एवं वराहादि पुराणोमे तीर्थ-व्रत-दानादिके विशेष उल्लेख हैं । इनमें तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्‌के विभिन्न नाम-रूपोकी उपासना करनेवाले संतों, महात्माओं और समर्थ राजाओं तथा भक्तोंने अपनी कल्याण-मयी सत्साधनाके प्रतापसे विभिन्न रूपमय भगवान्‌को अपनी रुचिके अनुसार वराह, नृसिंह, राम, कृष्ण, शिव-शक्ति, सूर्यादिके रूपमें अपने ही साधन-स्थानमे प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की । इस प्रकार एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूप-शक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें, अनन्त नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित हुए । भगवान्‌के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुचिके अनुसार सेवन करनेवालेको यथायोग्य फल देते हैं । यही तीर्थोंका रहस्य है । इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थको सर्वोपरि बतलाना सर्वथा उचित ही है । इसी प्रकार व्रतोंकी भी महिमा है । जयन्तियोंमें भगवान्‌की विशेष संनिधि प्राप्त होती है । देश-काल, पात्र एवं मन्त्रादि साधनाके योगसे भगवान्‌का शीघ्र साक्षात्कार होता है, जिससे प्राणी सर्वथा कृतार्थ हो जाता है, कहा भी गया है—

> त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
> आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
> यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
> तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥
> (श्रीमद्भा० ३ । ९ । ११)

इस प्रकार पुराणोंकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह सब अल्प ही है ।

वेदोंमें भगवान् यज्ञ-वराह

(श्रीमद्रामानन्द-सम्प्रदायाचार्य, सारस्वत-सार्वभौम स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी महाराज)

भारतीयोंका उद्घोष है कि वेद सर्वविद्याओंके स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं । उनमें सभी भावोंका समावेश है । उनसे सभी धर्म निकले—'वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ।' उनमें भूत-भविष्यका भी निर्देश है । वेदोंमें 'वराह' शब्द तथा भगवान् वराहका चरित्र—ऋक् १ । ६१ । ७; ११४, ५, ८ । ७७ । १०, १० । २८, ४, ९९, ६, ९ । ९७ । ८, १० । ६७ । ७, १० । ९९ । ६, तैत्तिरीय सं० ६ । २ । ४, ३, ७ । १ । ५ । १,७ । १ । ५, आदिमें प्राप्त होता है । तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ । १३, तैत्तिरीय आरण्यक १० । ३० । १ आदिमें वराहावतारका सुस्पष्ट उल्लेख है । मैत्रायणी सं० १ । ६ । ३ । ३, ९, ३, ४, ४, ६, काठक सं० ८, २, २५, २७, कौथुम० १ । ५२४, २ । ४६६, जैमिनी० १ । ५४, २ । ३५, शौनकसं० पैप्पलादसंहिता ३ । १५, २, १६ । १४ । २२में भगवान् वराहका उल्लेख है । नरसिंहपु० ३९, विष्णुपुराण १ । ४, भागवत १ । ३, २ । ७, ३ । १३, ५ । १८, ९ । ९७ । ७, महाभारत, मत्स्यपुराण ४७ । ४७, वायुपुराण १ । २३में यज्ञावतार भगवान् वराह-विष्णुका रमणीय चरित्र है । 'वराह' शब्दके यद्यपि 'साम-संस्कारादि' भाष्योंमें अन्य अर्थ भी किये गये हैं, पर वहाँ भगवान् यज्ञ-वराहकी भक्तिका अर्थ भी भली प्रकार संगत हुआ दिखाया गया है । उदाहरण-के लिये कौथुमसंहिताका १ । ५२४ तथा २ । ४६६ मन्त्र । यद्यपि ये दोनों मन्त्र पुनरुक्तमात्र हैं और 'ऋक्-साम' मन्त्र ही हैं । और ऋक् ९ । ९७ । ७में भी प्राप्त हैं, पर ये भी 'वराह-विष्णु'की आराधनाके साधक हैं ।

वराहपुराणके दो दिव्य श्लोक

(लेखक-श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी महाराज)

स्थिरे मनसि सुस्वस्थे शरीरे सति यो नरः।
धातुसाम्ये स्थिते स्मर्ता विश्वरूपं च मां भजन्॥
ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसंनिभम्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥
(वराहपुराणका खिलांश)

भगवती वसुंधराके पूछनेपर भगवान् वराह कहते हैं—'जो मेरा भक्त स्वस्थावस्थामें निरन्तर मेरा स्मरण करता रहता है, उसे ही मरते समय जब चेतना नहीं रहती और वह सूखे काष्ठ-पाषाणकी भाँति पड़ा रहकर मेरा चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है तो मैं उसका स्मरण करता हूँ और उसे परमगति—मुक्तिकी ओर ले जाता हूँ।'

हमारे शास्त्रोंका सिद्धान्त है—'अन्ते या मतिः सा गतिः' मरते समय जिस साधककी जैसी मति होती है, वैसी ही उसकी गति होती है। हमने सुना है—एक बड़े तपस्वी महात्मा थे। उनका प्राणान्त एक बेरके वृक्षके नीचे हुआ। उनके शिष्यको भान हुआ—गुरुजीकी सद्गति नहीं हुई। उसने लोगोंसे पूछा—'गुरुजीकी मृत्यु कहाँ हुई और वे अन्तमें क्या कह रहे थे? क्या देख रहे थे?' लोगोंने कहा—'बेरके वृक्षके नीचे वे एक बेरको देखते-देखते मरे।' शिष्यने समझ लिया—गुरुजीकी अन्तिम मति पके बेरमें लग गयी थी। बेरको तोड़ा तो उसमें एक विशेष कीड़ा निकला। फिर उसने उनके कल्याणार्थ धर्म किये-कराये।

मरते समय भगवत्स्मरणका बड़ा माहात्म्य बताया गया है। कहना चाहिये, जितना जप, तप, भजन किया जाता है, इसीलिये किया जाता है कि मरते समय हमें भगवत्स्मरण बना रहे। जैसे वर्षभर छात्र पाठ्यपुस्तकोंका तन्मयताके साथ इसीलिये अभ्यास करता है कि अन्तिम परीक्षाके समय प्रश्नपत्रोंको ठीक-ठीक लिख सकें। जीवनभर भजन-पूजन किया, मरते समय मन किसी अन्यमें अटक गया तो दूसरे जन्ममें वही होना पड़ेगा। जैसे राजर्षि भरत निरन्तर भगवद्-भजन-पूजनमें ही तल्लीन रहते थे, पर मरते समय उनका मन हिरनके बच्चेमें लग गया तो उन्हें दूसरे जन्ममें हिरन ही होना पड़ा; किंतु भजन व्यर्थ नहीं होता—'नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति' (गीता ६।४०)

इस सिद्धान्तसे हिरन-योनिके पश्चात् ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण जडभरत होकर मुक्त हो गये। फिर भी अन्तमें भगवत्स्मृति न होनेसे उन्हें हिरन तो बनना ही पड़ा। इसीलिये एक भक्तने भगवान्से प्रार्थना करते हुए यह याचना की है—

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥
(प्रपन्नगीता ५३)

'हे कृष्ण! आपके चरणरूप पिंजरामें मेरा मनरूप राजहंस इसी समय प्रविष्ट हो जाय; क्योंकि मरते समय सभी नाडियाँ वात, पित्त और कफ—त्रिदोषसे अवरुद्ध हो जाती हैं और पञ्चप्राण भी विकृत हो जाते हैं; वे अपने-अपने स्थानोंको छोड़ते हैं। श्वास लेनेमें भी बड़ा परिश्रम पड़ता है। कण्ठ घुर-घुर करने लगता है। धातुएँ और वाणी अवरुद्ध हो जाती हैं। मूर्छा आ जाती है, चेतना लुप्त हो जाती है। न तो वाणीसे आपके नामोंका उच्चारण कर सकते हैं, न मनसे आपके रूपका ही स्मरण कर सकते हैं। यदि अन्त समयमें आपका स्मरण न हुआ तो हमें पुनः चौरासीके चक्करमें घूमना पड़ेगा। मृत्युके समय आपका स्मरण आवश्यक है। मुनि

लोग कोटि-कोटि यत्न करते हैं; किंतु अन्त समयमें—मृत्युकालमें—रामनामका उच्चारण-स्मरण नहीं होता।' जब अन्त समयमें स्मरण न हुआ तो दुर्गति ही होगी। भागवतमें राजर्षि भरतकी तपस्याका कितना दिव्य वर्णन है फिर भी अन्त समयमें हरिका स्मरण न होकर उनका मन हिरनमें फँसा रहा और अन्तिम समयमें उसीके स्मरणसे वे हिरन हो गये।

अतः श्रीभगवान् पृथ्वीसे कहते हैं कि ऐसे भक्तका मरते समय तो मैं ही उसका स्मरण करता हूँ और उसे परमगतितक पहुँचा दूँगा। यही भगवान्की भक्त-वत्सलताकी पराकाष्ठा है।

एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें ही प्रातः भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनोंके लिये गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण आसन लगाकर ध्यानमग्न थे। धर्मराज बहुत देरतक खड़े रहे। जब भगवान्का ध्यान भङ्ग हुआ तब उन्होंने उठकर धर्मराजका अभिनन्दन किया और पूछा—'आप कितनी देरसे आये हैं?'

धर्मराजने कहा—ये सब बातें तो पीछे होंगी, आप यह बताइये कि सबके ध्येय तो आप ही हैं। संसार आपका ही ध्यान करता है, आप किसका ध्यान कर रहे थे? आपके भी कोई स्मरणीय हैं क्या?

भगवान्ने कहा—'धर्मराज! मै अपने असमर्थ-अशक्त भक्तोको स्मरण करता हूँ। भीष्मपितामहके शरीरमें नखसे लेकर शिखातक बाण घुसे हुए हैं, वे पीड़ासे अत्यन्त व्यथित हैं। अतः इस समय मे उनका ही स्मरण कर रहा हूँ।'

यह सुनकर धर्मराज भाइयोसहित भीष्मपितामहके दर्शनार्थ गये। भगवान् भी गये और भगवान्ने उन्हे उपदेश करनेको कहा।

पितामहने कहा—भगवन्! मेरे सम्पूर्ण शरीरमें बाण बिंधे रहनेसे मै चेतनाशून्य-सा हो रहा हूँ। उपदेश कैसे करूँ?

इसपर भगवान्ने अपना अमृतस्पर्शी कर उनके शरीरपर फिराकर उनकी समस्त पीड़ा हर ली और कहा—'अब उपदेश करो।'

इसपर पितामहने पूछा—'भगवन्! यह द्रविड़-प्राणायाम क्यों कर रहे हो। पहले मेरी पीड़ा हरी, फिर मुझसे उपदेश करनेको कहते हो। आप स्वयं ही उपदेश क्यों नहीं करते?'

इसपर भगवान्ने कहा—"पितामह! मुझे अपनी कीर्तिसे अपने भक्तोंकी कीर्ति अत्यधिक प्रिय है। जब लोग कहेंगे—'भीष्मने यह बात ऐसे कही तो भीष्मकी प्रशंसा सुनकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी।"

भक्तवर जगन्नाथदासको संग्रहणी हो गयी थी। उसे सैकड़ों बार शौच होता। इन दिनों उनकी लँगोटी एक लड़का निरन्तर धोता रहा। इस प्रकार कुछ दिनोंतक वह उनकी सेवा करता रहा। जब उन्हें कुछ चेत हुआ तो उन्होंने पूछा—'वत्स! तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है?'

बालकने कहा—'तुम जिसका भजन करते हो, मैं वही हूँ। मेरा नाम 'जगन्नाथ' है।'

जगन्नाथदासजीने रोकर कहा—'भगवन्! इतना नीच काम करके आप मेरे ऊपर अपराध क्यो चढ़ा रहे हैं। आप सर्वसमर्थ हैं, क्या आप मेरी संग्रहणीको दूर नहीं कर सकते थे? आपने इतना नीच कार्य क्यों किया?'

इसपर भगवान्ने कहा—'प्रारब्धकर्मोंका तो भोगसे ही क्षय होता है। मुझे भक्तोंकी सेवा करनेमें अत्यधिक सुख होता है। मैं अपनी प्रसन्नताके लिये ही तुम्हारी सेवा कर रहा था।'

यहीं भगवान्की असीम कृपा और भक्तवत्सलता है। वराहपुराणके इन दो श्लोकोमें भगवान्की

प्रणतक्लेश-नाशपनेकी पराकाष्ठा दिखायी है । ये दो श्लोक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । श्रीरामानुजसम्प्रदायमें तीन चरम मन्त्र माने गये हैं । आचार्यगण अपने शिष्योंको इन्हीं तीनो मन्त्रोका उपदेश करते हैं । सर्वप्रथम मन्त्र तो वराहपुराणके ये ही दो श्लोक हैं, दूसरा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका 'सकृदेव प्रपन्नाय' है और तीसरा मन्त्र भगवद्गीताका 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' है ।

'कल्याण'का यह वराहपुराणाङ्क अन्य अङ्कोकी भाँति अङ्करत्नमालाका, एक जाज्वल्यमान रत्न हो, पाठक इस सात्त्विक पुराणसम्बन्धी अङ्कसे लाभान्वित हों, यही मेरी प्रभुके पादपद्मोंमें पुनः-पुनः प्रार्थना है ।

छप्पय

बनिगे सूअर श्याम मेघ सम लंब तड़ंगे ।
घुर्र-घुर्र करि घुसे नीरमहँ नंग-धड़ंगे ॥
आयो भीषण दैत्य भिड़े मकु दाँत चलावें ।
गई सिटिल्ली भूलि बली लखि मुँह मटकावें ॥
पटक्यो फिरि सटक्यो तुरत, भटक्यो लटक्यो चोटतें ।
चट्ट पट्ट मार्यो असुर, धरनी ˝ देखे ओटतें ॥
('भागवतचरित'से)

आचार्य वेङ्कटाध्वरिकृत भगवान् वराहकी स्तुति

कमलायतनेत्राय कमलायतनोरसे । वराहवपुषे दैत्यवाराहवपुषे नमः ॥ १ ॥

वामांसभूपायितविश्वधात्री वामस्तनन्यस्तकरारविंदः ।
जिघ्रन् मुखेनापि कपोलमेनां जीवातुरस्माकगुरोः स जीयात् ॥ २ ॥

वेदिस्तनूराहवनीयमास्यं बर्हीषि लोमानि स्रुक् च नासा ।
शम्या च दंष्ट्राऽजनि यस्य यूपो वालो मखात्मा स पुनातु पोत्री ॥ ३ ॥

पापेन दैत्येन भवाम्बुराशौ निपातितं मां निरवग्रहोर्मौ ।
धूतारिरुद्धृत्य धरामिवोच्चैः कुर्यान्मुदं मे कुहनावराहः ॥ ४ ॥

वेशंतति व्रतजुषां हृदयं मुनीनां वेगापगाविहतिकाननचङ्क्रमाणि ।
मुस्तागणंति किल यस्य सुरारिवर्गाः कोलः सकोपि कुशलं कुरुतादजस्रम् ॥ ५ ॥

कल्याणमङ्कुरति यस्य कटाक्षलेशाद्यस्य प्रिया वसुमती सवनं यदङ्गम् ।
अस्मद्गुरोः कुलधनं चरणौ यदीयौ भूयः शुभं दिशतु भूमिवराह एषः ॥ ६ ॥

कल्पंत संततघनाघननिर्विघातनिर्घातवातघननिष्ठुरतारधीरम् ।
मायाकिटेर्बधिरितद्रुहिणश्रवस्कं घोणापुटी घुरुघुरारसितं पुनातु ॥ ७ ॥

झडिति विलुठदूर्मीचाटवाचाटसिंधुस्फुटपटहहविद्रस्फोटदीतपोटमुद्यन् ।
खरखुरपुटघाताभूतखद्वारिवाटः कपटकिटिरघौघाटोपमुच्चाटयेन्नः ॥ ८ ॥

श्रीवेङ्कटाध्वरिकृतं वराहाष्टकं समाप्तम्

भगवान् यज्ञ-वराहकी पूजा एवं आराधन-विधि

वराहः कल्याणं वितरतु स वः कल्पविरमे
विनिर्धुन्वन्नौदन्वनमुदकमुर्वीमुदवहन् ।
खुराघातत्रुट्यत् कुलशिखरिकूटप्रविलुठच्-
शिलाकोटिस्फोटस्फुटघटितमाङ्गल्यपटहः ॥

वराहपुराण (अध्याय १२७-२८)के दीक्षासूत्रमें सात्त्विक 'गणान्तिका दीक्षा' की विधि निर्दिष्ट है, पर वहाँ भगवान् वराहकी सरल पूजाविधि एवं मन्त्रादि नहीं हैं। वैसे दीक्षा एवं मन्त्रपर '**अथातो दीक्षा कस्य**'से 'गोपथ-ब्राह्मण' आदि वैदिक ग्रन्थोंमें भी पर्याप्त सामग्री है, पर इन्हें यहाँ अन्य पुराणों एवं आगमोंके अनुसार यज्ञ वराहविष्णुकी आराधनाकी विधि देनेका प्रयत्न किया जा रहा है। पूजा-आराधनाके पूर्व दीक्षा आवश्यक है। धातुपाठमें 'दीक्ष्'-* धातु बह्वर्थक है और १।६०१ पर पठित है। जैसे 'अव्' धातुके २१-२२ अर्थ हैं, वैसे ही इसके भी ५-६ अर्थ हैं। इस प्रकार भी यह आगमोंके विचारका प्रमापक है। उनके अनुसार 'दिव्य ज्ञान' दीक्षासे ही होता है—

दीयते दिव्यविज्ञानं क्षीयते पापसंचयः।
अतो दीक्षेति सम्प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

'महाकपिल-पाञ्चरात्र' तथा 'नारायणीय'में भी दीक्षा आवश्यक निर्दिष्ट है। केवल पुस्तकको देखकर मन्त्र जपना सर्वत्र हानिकारक बतलाया है—

पुस्तकाल्लिखितो मन्त्रो येन सुन्दरि जप्यते।
न तस्य जायते सिद्धिर्हानिरेव पदे पदे॥
(महाकपि० पाञ्च० कुला० १५।२२)

फिर इसके 'वेध', 'शाम्भव', 'स्पर्श†,' दृष्टिजनित,' 'कला', 'निर्वाण', 'वर्ण', 'पूर्ण', 'शक्तिपात' आदि अनेक भेद उन आगमोंमे तथा 'वराहपुराण'में भी निर्दिष्ट हैं।

इनमें 'वेधदीक्षा'से तत्काल पाश-पाप-मुक्तिपूर्वक दिव्य भावकी प्राप्ति होती है और जीव साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है—

गुरूपदिष्टमार्गेण वेधं कुर्याद्विचक्षणः।
पापमुक्तः क्षणाच्छिष्यश्छिन्नपाशस्तथा भवेत्॥
बाह्यव्यापारनिर्मुक्तो भूमौ पतति तत्क्षणात्।
संजातदिव्यभावोऽसौ सर्वं जानाति शाम्भवि।
वेधविद्धः शिवः साक्षान्न पुनर्जन्मतां व्रजेत्॥'
(पडन्वयमहारत्न, कुलार्णव १४।६०—६३)

दीक्षाविधि सर्वत्र प्रायः 'वराहपुराणके' अ० १२७ के 'दीक्षासूत्र'के समान ही निर्दिष्ट है। पर मन्त्र-दीक्षामें राशिचक्र, 'अकथह', 'अकडम' आदि चक्रोंसे मेलापक भी आवश्यक है। पर यदि स्वप्नमें कोई दीक्षा देता है, तो उसमें किसी प्रकारके विचारकी आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार सिद्ध देवता या दत्तात्रेयादि महर्षियों-द्वारा ध्यान, समाधि या प्रत्यक्ष-प्राप्त दीक्षामें भी कोई विचार आवश्यक नहीं है—

'सिद्धसारस्वततन्त्र'के अनुसार तो 'वाराहमन्त्र'में भी ऋणि-धनी या अकडम, अकथह आदि शोधनकी आवश्यकता नहीं है— (शेष पृष्ठ ४४८ पर)‡

* (क) दीक्ष—'मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु'। मौण्ड्यं—वपनम्, इज्या—यजनम्, उपनयनम्—मौर्वीबन्धः, नियमः—संयमः, व्रतादेशः—संस्कारादेशकथनम्, (क्षीरतरङ्गिणी, भ्वादिगण ६०१)।

(ख) Monier Williams के अनुसार 'ताण्ड्य—ब्राह्मण २।४।१८ 'ऐतरेय ब्राह्मण' ४।२५ महाभारत आदिमें राज्याभिषेक, सोमयाग, युद्ध, तत्परता आदि अर्थोंमें भी यह दीक्ष् धातु प्रयुक्त है—

(ग) 'धातुकाव्य'की 'पदचन्द्रिका' व्याख्याके अनुसार ये मुख्य 'व्रतादेश'के ही अनेक भेद माने हैं—'क्वचित् गुर्वादिनन्दे ते व्रतमस्त्विति शासनात्। आचार्यो दीक्षते वाग्मी यजमानस्तु माणवः॥ तपसे च महानन्ये तत्र ह्यादेशना व्रतम्।' (१।६०१की पदचन्द्रिका व्याख्या)।

† 'स्पर्शदीक्षा'के उदाहरण महर्षि दत्तात्रेय हैं। इन्होंने अलर्क, यदु, प्रह्लादादिको स्पर्श-मात्रसे दिव्य भावतक पहुँचा दिया था।

‡ स्थानाभावके कारण वराहपुराण-सम्बन्धी बहुतसे महत्त्वपूर्ण लेख पृ० ३८८ के बाद दिये गये हैं, जो अत्यन्त उपादेय एवं ज्ञानवर्द्धक हैं।

श्री वराहावतार

भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार

[पृष्ठ सं० ३३]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीवराहमहापुराण

ॐ नमो भगवते महावराहाय

भगवान् वराहके प्रति पृथ्वीका प्रश्न और भगवान्‌के उदरमें विश्वब्रह्माण्डका दर्शनकर भयभीत हुई पृथ्वीद्वारा उनकी स्तुति

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्।
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खणखणायते ॥
दंष्ट्राग्रेणोद्धृता गौरुदधिपरिवृता पर्वतैर्निम्नगाभिः
साकं मृत्पिण्डवत्प्राग्बृहदुरुवपुषाऽनन्तरूपेण येन।
सोऽयं कंसासुरारिर्मुरनरकदशास्यान्तकृत्सर्वसंस्थः
कृष्णो विष्णुः सुरेशो नुदतु मम रिपूनादिदेवो वराहः ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् वराह, नररत्न नरऋषि, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता भगवान् व्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणपर विजय प्राप्त करानेवाले वराहपुराणका पाठ करना चाहिये।

जिनके लीलापूर्वक पृथ्वीका उद्धार करते समय उनके खुरोंमें फँसकर सुमेरु पर्वत खन-खन शब्द करता है, उन भगवान् वराहको नमस्कार है।

जिन अनन्तरूप भगवान् विष्णुने प्राचीन कालमें समुद्रोंसे घिरी, वन-पर्वत एवं नदियोंसहित पृथ्वीको अत्यन्त विशाल शरीरके द्वारा अपनी दाढके अग्रभागपर मिट्टीके (छोटे-से) ढेलेकी भाँति उठा लिया था, वे कंस, मुर, नरक तथा रावण आदि असुरोंका अन्त करनेवाले कृष्ण एवं विष्णुरूपसे सबमे व्याप्त देवदेवेश्वर आदिदेव भगवान् वराह मेरी सभी बाधाओं (काम, क्रोध, लोभ आदि आध्यात्मिक शत्रुओं)को नष्ट करे।

सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमे जब सर्वव्यापी भगवान् नारायणने वराह-रूप धारण करके अपनी शक्तिद्वारा एकार्णवकी अनन्त जलराशिमें निमग्न पृथ्वीका उद्धार किया, उस समय पृथ्वीने उनसे पूछा।

पृथ्वीने कहा—प्रभो! आप प्रत्येक कल्पमें सृष्टिके आदिकालमे इसी प्रकार मेरा उद्धार करते रहते हैं; परंतु केशव! आपके स्वरूप एवं सृष्टिके प्रारम्भके विषयमें मै आजतक न जान सकी। जब वेद लुप्त हो गये थे, उस समय आप मत्स्यरूप धारण कर समुद्रमें प्रविष्ट हो गये थे और वहाँसे वेदोंका उद्धार करके आपने ब्रह्माको दे दिया था। मधुसूदन! इसके अतिरिक्त जब देवता और दानव एकत्र होकर समुद्रका मन्थन करने लगे, तब आपने कच्छपावतार ग्रहण करके मन्दराचल पर्वतको धारण किया था। भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं। जब मैं जलमें डूब रही थी, तब आपने रसातलसे, जहाँ सब ओर जल-ही-जल था, अपनी एक दाढ़पर रखकर मेरा उद्धार किया है। इसके अतिरिक्त जब वरदानके प्रभावसे हिरण्यकशिपुको असीम अभिमान हो गया था और वह पृथ्वीपर भाँति-भाँतिके उपद्रव करने लगा था, उस समय वह आपके द्वारा ही मारा गया था। देवाधिदेव! प्राचीन कालमे आपने ही जमदग्निनन्दन परशुरामके रूपमें अवतीर्ण होकर मुझे क्षत्रियरहित कर दिया था। भगवन्! आपने क्षत्रियकुलमे दाशरथि श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण होकर क्षत्रियोचित पराक्रमसे रावणको नष्ट कर दिया था

तथा वामनरूपसे आपने ही बलिको बाँधा था । प्रभो ! मुझे जलसे ऊपर उठाकर आप सृष्टिकी रचना किस प्रकार करते हैं तथा इसका क्या कारण है ? आपकी इन लीलाओंके रहस्यको मैं कुछ भी नहीं जानती।

विभो ! मुझे एक बार जलके ऊपर स्थापित करनेके अनन्तर आप किस प्रकार सृष्टिके पालनकी व्यवस्था करते हैं ? आपके निरन्तर सुलभ रहनेका कौन-सा उपाय है ? सृष्टिका किस प्रकार आरम्भ और अवसान होता है ? चारों युगोंकी गणनाका कौन-सा प्रकार है तथा युगोंका क्रम किस प्रकार चलता है ? महेश्वर ! उन युगोंमें किस युगकी प्रधानता है तथा किस युगमें आप कौन-सी लीला किया करते हैं ? यज्ञमें सदा संलग्न रहनेवाले कितने राजा हो चुके हैं और उनमेंसे किन-किनको सिद्धि सुलभ हुई है ? प्रभो ! आप मुझपर प्रसन्न हों और ये सब विषय संक्षेपसे बतानेकी कृपा करें।

पृथ्वीके ऐसा कहनेपर शूकररूपधारी भगवान् आदि-वराह हँस पड़े । हँसते समय उनके उदरमें जगद्धात्री पृथ्वीको महर्षियोंसहित रुद्र, वसु, सिद्ध एवं देवताओंका समुदाय दीखने लगा । साथ ही उसने वहाँ अपने-अपने कर्तव्यपालनमें तत्पर सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और सातों लोकोंको भी देखा । यह सब देखते ही भय एवं विस्मयसे पृथ्वीके सभी अङ्ग काँपने लगे । इस प्रकार पृथ्वीको भयभीत देखकर भगवान् वराहने अपना मुख बंद कर लिया । तब पृथ्वीने उनको चतुर्भुज रूप धारण कर महासागरमें शेषनागकी शय्यापर सोये देखा । उनकी नाभिसे कमल निकला हुआ था। फिर तो चार भुजाओंसे सुशोभित उन परमेश्वरको देखकर देवी पृथ्वीने हाथ जोड़ लिया और उनकी स्तुति करने लगी ।

पृथ्वीने कहा—कमलनयन ! आपके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर फहरा रहा है, आप स्मरण करते ही भक्तोंके पापोंका हरण करनेवाले हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है । देवताओंके द्वेषी दैत्योंका दलन करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है । जो शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं, जिनके वक्षःस्थलपर लक्ष्मी शोभा पाती हैं तथा भक्तोंको मुक्ति प्रदान करना ही जिनका स्वभाव है, ऐसे सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर आप प्रभुको बारम्बार नमस्कार है । प्रभो ! आपके हाथमें खड्ग, चक्र और शार्ङ्ग धनुष शोभा पाते हैं, आपपर जन्म एवं मृत्युका प्रभाव नहीं पड़ता तथा आपके नाभिकमलपर ब्रह्माका प्राकट्य हुआ है, ऐसे आप प्रभुके लिये बारम्बार नमस्कार है । जिनके अधर और करकमल लाल विद्रुममणिके समान सुशोभित होते हैं, उन जगदीश्वरके लिये नमस्कार है । भगवन् ! मैं निरुपाय नारी आपकी शरणमें आयी हूँ, मेरी रक्षा करनेकी कृपा करें । जनार्दन ! सघन नील अञ्जनके समान श्यामल आपके इस वराहविग्रहको देखकर मैं भयभीत हो गयी हूँ । इसके अतिरिक्त चराचर सम्पूर्ण जगतको आपके शरीरमें देखकर भी मैं पुनः भयको प्राप्त हो रही हूँ । नाथ! अब आप मुझपर दया कीजिये । महाप्रभो ! मेरी रक्षा आपकी कृपापर निर्भर है ।

भगवान् केशव मेरे पैरोंकी, नारायण मेरे कटिभागकी तथा माधव दोनों जङ्घाओंकी रक्षा करें । भगवान् गोविन्द गुह्याङ्गकी रक्षा करें । विष्णु मेरी नाभिकी तथा मधुसूदन उदरकी रक्षा करें । भगवान् वामन वक्षःस्थल एवं हृदयकी रक्षा करें । लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु मेरे कण्ठकी, हृषीकेश मुखकी, पद्मनाभ नेत्रोंकी तथा दामोदर मस्तककी रक्षा करें ।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके नामोंका अपने अङ्गोंमें न्यास करके पृथ्वीदेवी 'भगवन् विष्णो ! आपको नमस्कार है' ऐसा कहकर मौन हो गयी ।

(अध्याय १)

विभिन्न सर्गोंका वर्णन तथा देवर्षि नारदको वेदमाता सावित्रीका अद्भुत कन्याके रूपमें दर्शन होनेसे आश्चर्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—सभी जीवधारियोंके शरीरोंमें आत्मारूपसे स्थित भगवान् श्रीहरि पृथ्वीकी भक्तिसे परम संतुष्ट हो गये। उन्होंने वराह-रूप धारण करके पृथ्वीको अपनी योगमायाका दर्शन कराया और फिर उसी रूपमें स्थित रहकर बोले—'सुश्रोणि! तुम्हारा प्रश्न यद्यपि बहुत कठिन है एवं यह पुरातन इतिहासका विषय है, तथापि मै सभी शास्त्रोसे सम्मत इस विषयका प्रतिपादन करता हूँ। पृथ्वीदेवि! साधारणतः सभी पुराणोमें यह प्रसङ्ग आया है।

भगवान् वराहने कहा—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—जहाँ ये पाँच लक्षण विद्यमान हो, उसे पुराण समझना चाहिये। वरानने! पुराणोंमें सर्ग अर्थात् सृष्टिका स्थान प्रथम है। अतः मै पहले उसीका वर्णन करता हूँ। इसके आरम्भसे ही देवताओं और राजाओंके चरित्रका ज्ञान होता है। परमात्मा सनातन है। उनका कभी किसी कालमें नाश नही होता। वे परमात्मा सृष्टिकी इच्छासे चार भागोमें विभक्त हुए, ऐसा वेदज्ञ पुरुष जानते है। सृष्टिके आदिकालमें सर्वप्रथम परमात्मासे अहंतत्त्व, फिर आकाश आदि पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए। उसके पश्चात् महत्तत्त्व प्रकट हुआ और फिर अणुरूपा प्रकृति और इसके बाद समष्टि बुद्धिका प्रादुर्भाव हुआ। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोसे युक्त होकर वह बुद्धि पृथक्-पृथक् तीन प्रकारके भेदोमें विभक्त हो गयी। इस गुणत्रयमेंसे तमोगुणका संयोग प्राप्त करके महद्ब्रह्मका प्रादुर्भाव हुआ, इसको सभी तत्त्वज्ञ प्रधान अर्थात् प्रकृति कहते है। इस प्रकृतिसे भी क्षेत्रज्ञ अधिक महिमायुक्त है। उस परब्रह्मसे सत्त्वादि गुण, गुणोसे आकाश आदि तन्मात्राएँ और फिर इन्द्रियो-का समुदाय बना। इस प्रकार जगत्की सृष्टि व्यवस्थित हुई। भद्रे! पाँच महाभूतोसे स्वयं मैंने स्थूल शरीरका निर्माण किया। देवि! पहले केवल शून्य था। फिर उसमें शब्दकी उत्पत्ति हुई। शब्दसे आकाश हुआ। आकाशसे वायु, वायुसे तेज एवं तेजसे जलकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद प्राणियोंको अपने ऊपर धारण करनेके लिये तुम्हारी—(पृथ्वीकी) रचना हुई।

पृथ्वी और जलका संयोग होनेपर बुद्बुदाकार कलल बना और वही अण्डेके आकारमें परिणत हो गया। उसके बढ़ जानेपर मेरा जलमय रूप दृष्टिगोचर हुआ। मेरे इस रूपको स्वयं मैंने ही बनाया था। इस प्रकार नार अर्थात् जलकी सृष्टि करके मैं उसीमें निवास करने लगा। इसीसे मेरा नाम 'नारायण' हुआ। वर्तमान कल्पके समान ही मै प्रत्येक कल्पमें जलमें शयन करता हूँ और मेरे सोते समय सदैव मेरी नाभिसे इसी प्रकार कमल उत्पन्न होता है, जैसा कि आज तुम देख रही हो। देवि! ऐसी स्थितिमें मेरे नाभिकमलपर चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तब मैंने उनसे कहा—'महामते! तुम प्रजाकी रचना करो।' ऐसा कहकर मै अन्तर्धान हो गया और ब्रह्मा भी सृष्टिरचनाके चिन्तनमें लग गये। वसुन्धरे! इस प्रकार चिन्तन करते हुए ब्रह्माको जब कोई मार्ग नही सूझ पडा, तो फिर उन अव्यक्तजन्माके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ। उनके इस क्रोधके परिणामस्वरूप एक बालकका प्रादुर्भाव हुआ। जब उस बालकने रोना प्रारम्भ किया, तब अव्यक्तरूप ब्रह्माने उसे रोनेसे मना किया। इसपर उस बालकने कहा—'मेरा नाम तो बता दीजिये।' तब ब्रह्माने रोनेके कारण उसका नाम 'रुद्र' रख दिया। शुभे! उस बालकसे भी ब्रह्माने कहा—'लोकोंकी रचना करो।' परंतु इस कार्यमें

अपनेको असमर्थ जानकर उस बालकने जलमें निमग्न होकर तप करनेका निश्चय किया ।

उस रुद्र नामक बालकके तपस्याके लिये जलमें निमग्न हो जानेपर ब्रह्माने फिर दूसरे प्रजापतिको उत्पन्न किया । दाहिने अँगूठेसे उन्होंने प्रजापतिकी तथा बायें अँगूठेसे प्रजापतिके लिये पत्नीकी सृष्टि की । प्रजापतिने उस स्त्रीसे स्वायम्भुव मनुको उत्पन्न किया । इस प्रकार पूर्वकालमें ब्रह्माने स्वायम्भुव मनुके द्वारा प्रजाओंकी वृद्धि की ।

पृथ्वी बोली—देवेश्वर ! प्रथम सृष्टिका और विस्तारसे वर्णन करनेकी कृपा करें तथा नारायण ब्रह्मारूपसे कैसे विख्यात हुए ? मुझे यह सब भी बतलानेकी कृपा करें ।

वराह भगवान् कहते हैं—देवि पृथ्वि ! नारायणने ब्रह्मारूपसे जिस प्रकार प्रजाओंकी सृष्टि की, उसे मैं विस्तृत रूपसे कहता हूँ, सुनो । शुभे ! पिछले कल्पका अन्त हो जानेपर रात्रि व्याप्त हो गयी । भगवान् श्रीहरि उस समय सो गये । प्राणोंका नितान्त अभाव हो गया । फिर जगनेपर उनको यह जगत् शून्य दिखायी पडा । भगवान् नारायण दूसरोंके लिये अचिन्त्य हैं । वे पूर्वजोंके भी पूर्वज, ब्रह्मस्वरूप, अनादि और सबके स्रष्टा हैं । ब्रह्माका रूप धारण करनेवाले वे परम प्रभु जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलयकर्ता हैं । उन नारायणके विषयमें यह श्लोक कहा जाता है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं ततो नारायणः स्मृतः ॥

पुरुषोत्तम नरसे उत्पन्न होनेके कारण जलको 'नार' कहा जाता है, क्योंकि जल भी नार अर्थात् पुरुषोत्तम परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं । सृष्टिके पूर्व वह नार ही भगवान् हरिका अयन—निवास रहा, अतएव उनकी नारायण संज्ञा हो गयी । फिर पूर्व-कल्पोंकी भाँति उन श्रीहरिके मनमें सृष्टिरचना-का संकल्प उदित हुआ । तब उनसे बुद्धिशून्य तमोमयी सृष्टि उत्पन्न हुई । पहले उन परमात्मासे तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र—यह पाँच पर्वोंवाली अविद्या उत्पन्न हुई । उनके फिर चिन्तन करनेपर तमोगुणप्रधान चेतनारहित जड़ (वृक्ष, गुल्म, लता, तृण और पर्वत) रूप पाँच प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई । सृष्टि-रचनाके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् इसे मुख्य सर्ग कहते हैं । फिर उन परम पुरुषके चिन्तन करनेपर दूसरी पहलेकी अपेक्षा उत्कृष्ट सृष्टि-रचनाका कार्य आरम्भ हो गया । यह सृष्टि वायुके समान वक्र गतिसे या तिरछी चलनेवाली हुई, जिसके फलस्वरूप इसका नाम तिर्यक्स्रोत पड़ गया । इस सर्गके प्राणियोंकी पशु आदिके नामसे प्रसिद्धि हुई । इस सर्गको भी अपनी सृष्टि-रचनाके प्रयोजनमें असमर्थ जानकर ब्रह्माद्वारा पुनः चिन्तन किये जानेपर एक और दूसरा सर्ग उत्पन्न हुआ । यह ऊर्ध्वस्रोत नामक तीसरा धर्मपरायण सात्त्विक सर्ग हुआ, जो देवताओंके रूपमें ऊर्ध्व स्वर्गादि लोकोंमें रहने लगा । ये सभी देवता ऊर्ध्वगामी एवं स्त्री-पुरुष-संयोगके फलस्वरूप गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इस प्रकार इन मुख्य सृष्टियोंकी रचना कर लेनेपर भी जब ब्रह्माने पुनः विचार किया, तो उनको ये भी परम पुरुषार्थ (मोक्ष) के साधनमें असमर्थ दीखे । तब फिर उन्होंने सृष्टि-रचनाका चिन्तन करना प्रारम्भ किया और पृथ्वी आदि नीचेके लोकोंमें रहनेवाले अर्वाक्स्रोत सर्गकी रचना की । इस अर्वाक्स्रोतवाली सृष्टिमें उन्होंने जिनको बनाया, वे मनुष्य कहलाये और वे परम पुरुषार्थके साधनके योग्य थे । इनमें जो सत्त्वगुणविशिष्ट थे, वे प्रकाशयुक्त हुए । रज एवं तमोगुणकी जिनमें अधिकता थी, वे कर्मोंका बारंबार अनुष्ठान

करनेवाले एवं दुःखयुक्त हुए। सुभगे ! इस प्रकार मैंने इन छः सर्गोंका तुमसे वर्णन किया। इनमें पहला महत्तत्त्वसम्बन्धी सर्ग, दूसरा तन्मात्राओंसे सम्बन्धित भूतसर्ग और तीसरा वैकारिक सर्ग है, जो इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार समष्टि बुद्धिके संयोगसे (प्रकृतिसे) उत्पन्न होनेके कारण यह प्राकृत सर्ग कहलाया। चौथा मुख्य सर्ग है। पर्वत-वृक्ष आदि स्थावर पदार्थ ही इस मुख्य सर्गके अन्तर्गत हैं। वक्र गतिवाले पशु-पक्षी तिर्यक्स्रोतमें उत्पन्न होनेसे तिर्यग्योनि या तैर्यक स्रोतके प्राणी कहे जाते हैं।

विधाताकी सभी सृष्टियोंमें उच्च स्थान रखनेवाली छठी सृष्टि देवताओंकी है। मानव उनकी सातवीं सृष्टिमें आता है। सत्त्वगुण और तमोगुणमिश्रित आठवाँ अनुग्रहसर्ग माना गया है; क्योंकि इसमें प्रजाओंपर अनुग्रह करनेके लिये ऋषियोंकी उत्पत्ति होती है। इनमें बादके पाँच वैकृत सर्ग और पहलेके तीन प्राकृत सर्गके नामसे जाने जाते हैं। नवाँ कौमार सर्ग प्राकृत-वैकृतमिश्रित है। प्रजापतिके ये नौ सर्ग कहे गये हैं। संसारकी सृष्टिमें मूल कारण ये ही हैं। इस प्रकार मैंने इन सर्गोंका वर्णन किया। अब तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहती हो ?

पृथ्वी बोली—भगवन् ! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माद्वारा रचित यह नवधा सृष्टि किस प्रकार विस्तारको प्राप्त हुई ? अच्युत ! आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—सर्वप्रथम ब्रह्माद्वारा रुद्र आदि देवताओंकी सृष्टि हुई। इसके बाद सनकादि कुमारों तथा मरीचि-प्रभृति मुनियोंकी रचना हुई। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, महान् तेजस्वी पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, नारद एवं महातपस्वी वसिष्ठ—ये दस ब्रह्माजीके मानस पुत्र हुए। उन परमेष्ठीने सनकादिको निवृत्तिसंज्ञक धर्ममें तथा नारदजीके अतिरिक्त मरीचि आदि सभी ऋषियोंको प्रवृत्तिसंज्ञक धर्ममें नियुक्त कर दिया। ये जो आदि प्रजापति हैं, इनका ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे प्राकट्य हुआ है (इसी कारण ये दक्ष कहलाते हैं) और इन्हींके वंशके अन्तर्गत यह सारा चराचर जगत् है। देवता, दानव, गन्धर्व, सरीसृप तथा पक्षिगण—ये सभी दक्षकी कन्याओंसे उत्पन्न हुए हैं। इन सबमें धर्मकी विशेषता थी।

ब्रह्माके जो रुद्र नामक पुत्र हैं, उनका प्रादुर्भाव क्रोधसे हुआ था। जिस समय ब्रह्माकी भौंहें रोषके कारण तन गयी थीं, तब उनके ललाटसे इनका प्रादुर्भाव हुआ। उस समय इनका शरीर अर्धनारीश्वरके रूपमें था। 'तुम स्वयं अपनेको अनेक भागोंमें बाँटो'—इनसे यों कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये। यह आज्ञा पाकर उन महाभागने स्त्री और पुरुष—इन दो भागोंमें अपनेको विभाजित कर दिया। फिर अपने पुरुष-रूपको उन्होंने ग्यारह भागोंमें विभक्त किया। तभीसे ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले इन ग्यारह रुद्रोंकी प्रसिद्धि हुई। अनघे ! तुम्हारी जानकारीके लिये मैंने इस रुद्र-सृष्टिका वर्णन कर दिया।

अब मैं संक्षेपसे युगमाहात्म्यका वर्णन करता हूँ। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं। इन चारों युगोंमें परम पराक्रमी तथा प्रचुर दक्षिणा देनेवाले जो राजा हो चुके हैं एवं जिन देवताओं और दानवोंने ख्याति प्राप्त की है तथा जिन धर्म-कर्मोंका उन्होंने अनुष्ठान किया है; वह मुझसे सुनो। पूर्वकालकी बात है, प्रथम कल्पमें स्वायम्भुव मनु हुए। उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके लोकोत्तर कर्म मनुष्योंके लिये असम्भव ही थे। धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले वे महाभाग प्रियव्रत और उत्तानपाद नामसे विख्यात हुए। प्रियव्रतमें तपोबल था और वे महान् यज्ञशाली थे। उन्होंने पुष्कल (अधिक) दक्षिणावाले अनेक महायज्ञोंद्वारा भगवान् श्रीहरिका यजन

किया था। उन्होने सातों द्वीपोंमें अपने भरत आदि पुत्रोंको अभिषिक्त कर दिया था और स्वयं वे महातपस्वी राजा वरदायिनी विशाला* नगरी—बदरिकाश्रममें जाकर तपस्या करने लगे थे। महाराज प्रियव्रत चक्रवर्ती नरेश थे। धर्मका अनुष्ठान उनका स्वाभाविक गुण था। अतएव उनके तपस्यामें लीन होनेपर उनसे मिलनेकी इच्छासे वहाँ स्वयं नारदजी पधारे। नारद मुनिका आगमन आकाश-मार्गसे हुआ था। उनका तेज सूर्यके समान छिटक रहा था। उन्हें देखकर महाराज प्रियव्रतको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने आसन, पाद्य एवं नैवेद्यसे नारदजीका भलीभाँति सत्कार किया। तत्पश्चात् उन दोनोंमें परस्पर वार्ता प्रारम्भ हो गयी। अन्तमें वार्तालापकी समाप्तिके समय राजा प्रियव्रतने ब्रह्मवादी नारदजीसे पूछा।

राजा प्रियव्रत बोले—नारदजी! आप महान् पुरुष हैं। इस सत्ययुगमें आपने कोई अद्भुत घटना देखी या सुनी हो, तो उसे बतानेकी कृपा करें।

नारदजीने कहा—महाराज! अवश्य ही मैने एक आश्चर्यजनक बात देखी है, वह सुनो। कल मै श्वेतद्वीप गया था, मुझे वहाँपर एक सरोवर दिखलायी पड़ा। उस सरोवरमें बहुत-से कमल खिले हुए थे। उसके तटपर विशाल नेत्रोवाली एक कन्या खड़ी थी। उस कन्याको देखकर मै अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गया। उसकी वाणी भी बड़ी मधुर थी। मैंने उससे पूछा—'भद्रे! तुम कौन हो, इस स्थानपर कैसे निवास करती हो और यहाँ तुम्हारा क्या काम है?' मेरे इस प्रकार पूछनेपर उस कुमारीने एकटक नेत्रोंसे मुझे देखा, पर न जाने क्या सोचकर वह चुप ही रही। उसके देखते ही मेरा सारा ज्ञान पता नही, कहाँ चला गया? राजन्! सम्पूर्ण वेद, समस्त शास्त्र, योगशास्त्र और वेदोंके शिक्षादि अङ्गोंकी मेरी सारी स्मृतियाँ उस किशोरीने मुझपर दृष्टिपात करके ही अपहृत कर लीं। तब मैं शोक और चिन्तासे ग्रस्त होकर महान् विस्मयमें पड़ गया। राजन्! ऐसी स्थितिमें मैंने उस कुमारीकी शरण ग्रहण की। इतनेमें ही मुझे उस कुमारीके शरीरमें एक दिव्य पुरुष दृष्टिगोचर हुआ। फिर उस पुरुषके भी हृदयमें दूसरे और उस दूसरे पुरुषके हृदयमें तीसरेका दर्शन हुआ, जिसके नेत्र लाल थे और वह बारह सूर्योंके समान तेजस्वी था। इस प्रकार उन तीनों पुरुषोंको मैंने वहाँ देखा, जो उस कन्याके शरीरमें स्थित थे। सुव्रत! फिर क्षणभरके बाद देखा, तो वहाँ केवल वह कन्या ही रह गयी थी एवं अन्य तीनों पुरुष अदृश्य हो गये थे। तत्पश्चात् मैंने उस दिव्य किशोरीसे पूछा—भद्रे! मेरा सम्पूर्ण वेदज्ञान कैसे नष्ट हो गया? इसका कारण बताओ।

कुमारी बोली—'मै समस्त वेदोंकी माता हूँ। मेरा नाम सावित्री है। तुम मुझे नहीं जानते। इसीके फलस्वरूप मैंने तुमसे वेदोंको अपहृत कर लिया है। तपरूपी धनका संचय करनेवाले राजन्! उस कुमारीके इस प्रकार कहनेपर मैंने विस्मय-विमुग्ध होकर पूछा—'शोभने! ये पुरुष कौन थे, मुझे यह बतानेकी कृपा करो।'

कुमारी बोली—मेरे शरीरमें विराजमान इन पुरुषोंकी जो तुम्हें झाँकी मिली है, इनमेसे जिसके सभी अङ्ग परम सुन्दर है, इसका नाम ऋग्वेद है। यह स्वयं भगवान् नारायणका स्वरूप है। यह अग्निमय है। इसके सस्वर पाठ करनेसे समस्त पाप तुरंत भस्म हो जाते हैं। इसके हृदयमें यह जो दूसरा पुरुष तुम्हें दृष्टिगोचर हुआ है, जिसकी उसीसे उत्पत्ति हुई है, वह यजुर्वेदके रूपमें

* महाभारत वनपर्व ९० । २४ । २५ तथा भागवत-माहात्म्यके अनुसार विशालापुरी बदरिकाश्रम ही है।

स्थित महाशक्तिशाली ब्रह्मा है। फिर उसके वक्ष:स्थलमें भी प्रविष्ट, जो यह परम पवित्र और उज्ज्वल पुरुष दीख रहा है, इसका नाम सामवेद है। यह भगवान् शंकरका स्वरूप माना गया है। स्मरण करनेपर सूर्यके समान सम्पूर्ण पापोंको यह तत्काल नष्ट कर देता है। ब्रह्मन्! तुमको दृष्टिगोचर हुए ये दिव्य पुरुष तीनों वेद ही हैं। नारद! तुम ब्रह्मपुत्रोंके शिरोमणि और सर्वज्ञान-सम्पन्न हो! यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें संक्षेपसे बता दिया। अब तुम पुनः सभी वेदों और शास्त्रोंको तथा अपनी सर्वज्ञताको पुनः प्राप्त करो। इस वेद-सरोवरमें तुम स्नान करो। इसमें स्नान करनेसे तुम्हें अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो जायगी।

राजन्! यह कहकर वह कन्या अन्तर्धान हो गयी। तब मैंने उस सरोवरमें स्नान किया और तदनन्तर आपसे मिलनेकी इच्छासे यहाँ चला आया।

(अध्याय २)

देवर्षि नारदद्वारा अपने पूर्वजन्मवर्णनके प्रसङ्गमें ब्रह्मपारस्तोत्रका कथन

प्रियव्रत बोले—भगवन्! आपके द्वारा पूर्व जन्मोंमें जो-जो कार्य सम्पन्न हुए हों, उन सबको मुझे बतानेकी कृपा करें, क्योंकि देवर्षे! उन्हें सुननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है।

नारदजीने कहा—राजेन्द्र! कुमारी सावित्रीकी बात सुनकर उस वेद-सरोवरमें मैंने ज्यों ही स्नान किया, उसी क्षण मुझे अपने हजारों जन्मोंकी बातें स्मरण हो आयीं। अब तुम मेरे पूर्वजन्मकी बात सुनो। अवन्ती नामकी एक पुरी है। मैं पूर्वजन्ममें उसमें निवास करनेवाला एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उस जन्ममें मेरा नाम सारस्वत था और सभी वेद-वेदाङ्ग मुझे सम्यक् अभ्यस्त थे। राजन्! यह दूसरे सत्ययुगकी बात है। उस समय मेरे पास बहुत-से सेवक थे, धन-धान्यकी अटूट राशि थी, भगवान्ने उत्तम बुद्धि भी दी थी। एक बार मैं एकान्तमें बैठकर विचार करने लगा कि संसार द्वन्द्वस्वरूप है; इसमें सुख-दुःख, हानि-लाभ आदिका चक्र सदा चलता रहता है। मुझे ऐसे संसारसे क्या लेना-देना है? अतः मुझे अब अपनी सारी सांसारिक धन-सम्पदा पुत्रोंको सौंपकर तपस्या करनेके लिये तुरंत सरस्वती नदीके तटपर चल देना चाहिये। यह विचार करनेके पश्चात्, क्या यह तत्काल करना उचित होगा, इस जिज्ञासाको लेकर मैंने भगवान्से प्रार्थना की। फिर भगवान्के आज्ञानुसार मैंने श्राद्धद्वारा पितरोंको, यज्ञद्वारा देवताओंको तथा दानद्वारा अन्य लोगोंको भी संतुष्ट किया। राजन्! तत्पश्चात् सभी ओरसे निश्चिन्त होकर मैं सारस्वत नामक सरोवरपर, जो इस समय पुष्करतीर्थके नामसे विख्यात है, चला गया। वहाँ जाकर परम मङ्गलमय पुराणपुरुष भगवान् विष्णुके नारायणमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप एवं ब्रह्मपार नामक उत्तम स्तोत्रका पाठ करता हुआ मैं भक्तिपूर्वक आराधना करने लगा। तब परम प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् श्रीहरि मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट हो गये।

प्रियव्रत बोले—महाभाग देवर्षे! ब्रह्मपारस्तोत्र कैसा है? इसे मैं सुनना चाहता हूँ। आप मुझपर सदा प्रसन्न रहते हैं, अतएव कृपापूर्वक मुझे इसका उपदेश करें।

नारदजीने कहा—जो परात्पर, अमृतस्वरूप, सनातन, अपार शक्तिशाली एवं जगत्के परम आश्रय हैं, उन पुराणपुरुष भगवान् महाविष्णुको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ। जो पुरातन, अतुलनीय, श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ एवं प्रचण्ड तेजस्वी हैं, जो गहन-गम्भीर बुद्धि-विचार करनेवालोंमें प्रधान तथा जगत्के शासक हैं, उन

श्रीहरिको मै प्रणाम करता हूँ । जो परसे भी पर हैं, जिनसे परे दूसरा कोई है ही नहीं, जो दूसरोंको आश्रय देनेवाले एवं महान् पुरुष हैं, जिनका धाम विशुद्ध एवं विशाल है, ऐसे पुराणपुरुष भगवान् नारायणकी परम शुद्धभावसे मै स्तुति करता हूँ । सृष्टिके पूर्व जब केवल शून्यमात्र था, उस समय पुरुषरूपसे जिन्होंने प्रकृतिकी रचना की, वे भक्तजनोमें प्रसिद्ध, शुद्धस्वरूप पुराणपुरुष भगवान् नारायण मेरे लिये शरण हों । जो परात्पर, अपारस्वरूप, पुरातन, नीतिज्ञोमें श्रेष्ठ, क्षमाशील, शान्तिके आगार तथा जगत्के शासक है, उन कल्याणस्वरूप भगवान् नारायणकी मै सदा स्तुति करता हूँ । जिनके हजारो मस्तक है, असंख्य चरण और भुजाएँ हैं, चन्द्रमा और सूर्य जिनके नेत्र है, क्षीरसागरमें जो शयन करते है, उन अविनाशी सत्यस्वरूप परम प्रभु भगवान् नारायणकी मै स्तुति करता हूँ । जो वेदत्रयीके अवलम्बन-द्वारा जाने जाते है, जो परब्रह्मरूप एक मूर्तिसे द्वादश आदित्यरूप बारह मूर्तियोंमें अभिव्यक्त होते हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीन परमोज्ज्वल मूर्तियोंमें स्थित है, जो अग्निरूपमें दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय—इन तीन भेदोमें विभक्त होते है, जो स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण—इन तीन तत्त्वोके अवलम्बनद्वारा लक्षित होते है, जो भूत, वर्तमान और भविष्यरूपसे त्रिकालात्मक हैं तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निरूप तीन नेत्रोंसे युक्त हैं, उन अप्रमेयस्वरूप भगवान् नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ । जो अपने श्रीविग्रहको सत्ययुगमें शुक्ल, त्रेतामें रक्त, द्वापरमें पीतवर्णसे अनुरञ्जित और कलियुगमें कृष्णवर्णमें प्रकाशित करते हैं, उन पुराणपुरुष श्रीहरिको मै नमस्कार करता हूँ । जिन्होने अपने मुखसे ब्राह्मणोंका, भुजाओसे क्षत्रियोका, दोनो जङ्घाओसे वैश्योका एवं चरणोंके अग्रभागसे शूद्रोंका सृजन किया है, उन विश्वरूप पुराणपुरुष भगवान् नारायणको मै प्रणाम करता हूँ । जो परेसे भी परे, सर्वशास्त्रपारंगत, अप्रमेय और योद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं, साधुओंके परित्राणरूप कार्यके निमित्त जिन्होने श्रीकृष्णअवतार धारण किया है तथा जिनके हाथ ढाल, तलवार, गदा और अमृतमय कमलसे सुशोभित है, उन अप्रमेयस्वरूप भगवान् नारायणको मै प्रणाम करता हूँ ।

राजन् ! इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव भगवान् नारायण प्रसन्न होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें मुझसे बोले—'वर माँगो ।' तब मैने उन प्रभुके शरीरमें लय होनेकी इच्छा व्यक्त की । मेरी बात सुनकर उन सनातन देवेश्वरने मुझसे कहा—'ब्रह्मन् ! अभी तुम शरीर धारण करो, क्योकि इसकी आवश्यकता है । तुमने अभी जो तपस्या प्रारम्भ करनेके पूर्व पितरोको नार (जल) दान किया है, अतः अबसे तुम्हारा नाम नारद होगा ।'*

ऐसा कहकर भगवान् नारायण तुरंत ही मेरी आँखोसे ओझल हो गये । समय आनेपर मैंने वह शरीर छोड़ दिया । तपस्याके प्रभावसे मृत्युके पश्चात् मुझे ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई । राजन् ! तदनन्तर ब्रह्माजीके प्रथम दिवसका आरम्भ होनेपर मेरी भी उनके दस मानस पुत्रोंमें उत्पत्ति हुई । सम्पूर्ण देवताओंकी भी सृष्टिका वह प्रथम दिन है—इसमें कोई संशय नही । इसी प्रकार भगवद्धर्मानुसार सारे जगत्की सृष्टि होती है ।

राजन् ! यह मेरे प्राकृत जन्मका प्रसङ्ग है, जिसके विषयमें तुमने प्रश्न किया था । राजेन्द्र ! भगवान् नारायणका ध्यान करनेसे ही मुझे लोकगुरुका पद प्राप्त हुआ, अतएव तुम भी उन श्रीहरिके परायण हो जाओ । (अध्याय ३)

---

* नारं पानीयमित्युक्तं पितॄणां तद्ददौ भवान् । तदाप्रभृति ते नाम नारदेति भविष्यति ॥ (अध्याय ३ । २३)

महामुनि कपिल और जैगीषव्यद्वारा राजा अश्वशिराको भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकताका प्रत्यक्ष दर्शन कराना

पृथ्वी बोली—भगवन् ! जो सनातन, देवाधिदेव, परमात्मा नारायण हैं, वे भगवान्के परिपूर्णतम स्वरूप हैं या नहीं ? आप इसे स्पष्ट बतानेकी कृपा करें ।

भगवान् वराह कहते हैं—समस्त प्राणियोंको आश्रय देनेवाली पृथ्वि ! मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दस उन्हीं सनातन परमात्माके स्वरूप कहे जाते हैं । शोभने ! उनके साक्षात् दर्शन पानेकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंके लिये ये सोपानरूप हैं । उनका जो परिपूर्णतम स्वरूप है, उसे देखनेमें तो देवता भी असमर्थ हैं । वे मेरे एवं पूर्वोक्त अन्य अवतारोंके रूपका दर्शन करके ही अपनी मनःकामना पूर्ण करते है । ब्रह्मा उन्हींकी रजोगुण और तमोगुण-मिश्रित मूर्ति है, उनके माध्यमसे ही श्रीहरि संसार-की सृष्टि एवं सचालन करते है । धरणि ! तुम उन्हीं भगवान् नारायणकी आदि मूर्ति हो, उनकी दूसरी मूर्ति जल और तीसरी मूर्ति तेज है । इसी प्रकार वायुको चौथी और आकाशको पाँचवीं मूर्ति कहते हैं । ये सभी उन्हीं परब्रह्म परमात्माकी मूर्तियाँ हैं । इनके अतिरिक्त क्षेत्रज्ञ, बुद्धि एवं अहंकार—ये उनकी तीन मूर्तियाँ और है । इस प्रकार उनकी आठ मूर्तियाँ है । देवि ! यह सारा जगत् भगवान् नारायणसे ओत-प्रोत है । मैने तुम्हें ये सभी बातें बता दी । अब तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहती हो ?

पृथ्वी बोली—भगवन् ! नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीहरिके परायण होनेके लिये कहनेपर राजा प्रियव्रत किस कार्यमें प्रवृत्त हुए ? मुझे यह बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! मुनिवर नारदकी विस्मयजनक बात सुनकर राजा प्रियव्रतको महान् आश्चर्य हुआ । उन्होने अपने राज्यको सात भागोंमें बाँटकर पुत्रोंको सौंप दिया और स्वयं तपस्यामें संलग्न हो गये । परब्रह्म परमात्माके 'नारायण' नामका जप करते-करते उनकी मनोवृत्ति भगवान् नारायणमें स्थिर हो गयी; अतः उन्हे देहत्यागके पश्चात् भगवान्के परमधामकी प्राप्ति हुई । सुन्दरि ! अब ब्रह्माजीसे सम्बन्ध रखनेवाला एक दूसरा प्रसङ्ग है, उसे सुनो ।

प्राचीन कालमें अश्वशिरा नामके एक परम धार्मिक राजा थे । उन्होंने अश्वमेध यज्ञके द्वारा भगवान् नारायणका यजन किया था जिसमें उन्होंने बहुत बडी दक्षिणा बाँटी थी । यज्ञकी समाप्तिपर उन राजाने अवभृथ स्नान किया । इसके पश्चात् वे ब्राह्मणोंसे घिरे हुए बैठे थे, उसी समय भगवान् कपिलदेव वहाँ पधारे । उनके साथ योगिराज जैगीषव्य भी थे । अब महाराज अश्वशिरा बड़ी शीघ्रतासे उठे, अत्यन्त हर्षके साथ उनका सत्कार किया और तत्काल दोनो मुनियोंके विधिवत् स्वागतकी व्यवस्था की । जब दोनों मुनिश्रेष्ठ भलीभाँति पूजित होकर आसन-पर विराजमान हो गये, तब महापराक्रमी राजा अश्वशिराने उनकी ओर देखकर पूछा—'आप दोनों अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले और योगके आचार्य हैं । आपने कृपापूर्वक स्वयं अपनी इच्छासे यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया है । आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणदेवता हैं । आप दोनों मेरे इस संशयका समाधान करें कि भगवान् नारायणकी आराधना मै कैसे करूँ ?'

दोनों ऋषियोंने कहा—राजन् ! तुम नारायण किसे कहते हो ? महाराज ! हम दो नारायण तो तुम्हारे सामने प्रत्यक्षरूपसे उपस्थित हैं ।

राजा अश्वशिरा बोले—आप दोनों महानुभाव ब्राह्मण हैं, आपको सिद्धि सुलभ हो चुकी है। तपस्यासे आपके पाप भी नष्ट हो गये—यह मैं मानता हूँ, किंतु 'हम दोनों नारायण हैं,' ऐसा आपलोग कैसे कह रहे हैं? भगवान् नारायण तो देवताओंके भी देवता हैं। शङ्ख, चक्र और गदासे उनकी भुजाएँ अलङ्कृत रहती हैं। वे पीताम्बर धारण करते हैं। गरुड़ उनका वाहन है। भला, संसारमें उनकी समानता कौन कर सकता है?

(भगवान् वराह कहते हैं—) कपिल और जैगीषव्य—ये दोनों ऋषि कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। वे राजा अश्वशिराकी बात सुनकर हँस पड़े और बोले—'राजन्! तुम विष्णुका दर्शन करो।' इस प्रकार कहकर कपिलजी उसी क्षण स्वयं विष्णु बन गये और जैगीषव्यने गरुडका रूप धारण कर लिया। अब तो उस समय राजाओंके समूहमें हाहाकार मच गया। गरुडवाहन सनातन भगवान् नारायणको देखकर महान् यशस्वी राजा अश्वशिरा हाथ जोड़कर कहने लगे—'विप्रवरो! आप दोनों शान्त हों। भगवान् विष्णु ऐसे नहीं हैं। जिनकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर प्रकट होकर ब्रह्मा अपने रूपसे विराजते हैं, वह रूप परमप्रभु भगवान् विष्णुका है।'

कपिल एवं जैगीषव्य—ये दोनो मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। राजा अश्वशिराकी उक्त बात सुनकर उन्होंने योगमायाका विस्तार कर दिया। अब कपिलदेव पद्मनाभ विष्णुके तथा जैगीषव्य प्रजापति ब्रह्माके रूपमें परिणत हो गये। कमलके ऊपर ब्रह्माजी सुशोभित होने लगे और उनके श्रीविग्रहसे कालाग्निके तुल्य लाल नेत्रोंवाले परम तेजस्वी रुद्रका प्राकट्य हो गया। राजाने सोचा—'हो-न-हो यह इन योगीश्वरोंकी ही माया है; क्योंकि जगदीश्वर इस प्रकार सहज ही दृष्टिगोचर नहीं हो सकते, वे सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीहरि तो सदा सर्वत्र विराजते हैं। भूत-प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वि! राजा अश्वशिरा अपनी सभामें इस प्रकार कह ही रहे थे कि उनकी बात समाप्त होने-न-होते खटमल, मच्छर, जूँ, भौंरे, पक्षी, सर्प, घोड़े, गाय, हाथी, बाघ, सिंह, शृगाल, हरिण एवं इनके अतिरिक्त और भी करोड़ों ग्राम्य एवं वन्य पशु राजभवनमें चारों ओर दिखायी पड़ने लगे। उस समय झुंड-के-झुंड प्राणियोंके समूहको देखकर राजाके आश्चर्यकी सीमा न रही। राजा अश्वशिरा यह विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये। इतनेमें ही सारी बात उनकी समझमें आ गयी। अहो! यह तो परम बुद्धिमान् कपिल और जैगीषव्य मुनिका ही माहात्म्य है। फिर तो राजा अश्वशिराने हाथ जोडकर उन ऋषियोंसे भक्तिपूर्वक पूछा—'विप्रवरो! यह क्या प्रपञ्च है?'

कपिल और जैगीषव्यने कहा—राजन्! हम दोनोंसे तुम्हारा प्रश्न था कि भगवान् श्रीहरिकी आराधना एवं उनको प्राप्त करनेका क्या विधान है? महाराज! इसीलिये हम लोगोंने तुमको यह दृश्य दिखलाया है। राजन्! सर्वज्ञ भगवान् श्रीहरिकी यह त्रिगुणात्मिका सृष्टि है, जो तुम्हें दृष्टिगोचर हुई है। भगवान् नारायण एक ही हैं। वे अपनी इच्छाके अनुसार अनेक रूप धारण करते रहते हैं। किसी कालमें जब वे अपनी अनन्त तेजोराशिको आत्मसात् करके सौम्यरूपमें सुशोभित होते हैं, तभी मनुष्योंको उनकी झाँकी प्राप्त होती है। अतएव उन नारायणकी अव्यक्त रूपमें आराधना सद्यः फलवती नहीं हो पाती*। वे जगत्प्रभु परमात्मा ही

* श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ (१२।५)

उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।

सबके शरीरमें विराजमान हैं। भक्तिका उदय होनेपर अपने शरीरमें ही उन परमात्माका साक्षात्कार हो सकता है। वे परमात्मा किसी स्थानविशेषमें ही रहते हों, ऐसी बात नहीं है; वे तो सर्वव्यापक हैं। महाराज! इसी निमित्त हम दोनोंके प्रभावसे तुम्हारे सामने यह दृश्य उपस्थित हुआ है। इसका प्रयोजन यह है कि भगवान्‌की सर्वव्यापकतापर तुम्हारी आस्था दृढ़ हो जाय। राजन्! इसी प्रकार तुम्हारे इन मन्त्रियों एवं सेवकोंके—सभीके शरीरमें भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं। राजन्! हमने जो देवता एवं कीट-पशुओंके समूह तुमको अभी दिखलाये, वे सब-के-सब विष्णुके ही रूप हैं। केवल अपनी भावनाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है; क्योंकि भगवान् श्रीहरि तो सबमें व्याप्त हैं ही। उनके समान दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसी भावनासे उन श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये। राजन्! इस प्रकार मैंने सच्चे ज्ञानका तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। अब तुम अपनी परिपूर्ण भावनासे भगवान् नारायणका, जो सबके परम गुरु हैं, स्मरण करो। धूप-दीप आदि पूजाकी सामग्रियोंसे ब्राह्मणोंको तथा तर्पणद्वारा पितरोंको तृप्त करो। इस प्रकार ध्यानमें चित्तको समाहित करनेसे भगवान् नारायण शीघ्र ही सुलभ हो जाते हैं। (अध्याय ४)
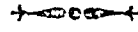
रैभ्य मुनि और राजा वसुका देवगुरु बृहस्पतिसे संवाद तथा राजा अश्वशिराद्वारा यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणका स्तवन एवं उनके श्रीविग्रहमें लीन होना

राजा अश्वशिरा बोले—'मुनिवरो! मेरे मनमें एक संदेह है, उसे दूर करनेमें आप दोनों पूर्ण समर्थ हैं। उसके फलस्वरूप मुझे मुक्ति सुलभ हो सकती है।' उनके इस प्रकार कहनेपर योगीश्वर, परम धर्मात्मा कपिलमुनिने यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ उस राजासे कहा।

कपिलजीने कहा—राजन्! तुम परम धार्मिक हो। तुम्हारे मनमें क्या संदेह है? बताओ, उसे सुनकर मैं दूर कर दूँगा।

राजा अश्वशिरा बोले—मुने! मोक्ष पानेका अधिकारी कर्मशील पुरुष है या ज्ञानी?—मेरे मनमें यह संदेह उत्पन्न हो गया है। यदि मुझपर आपकी दया हो तो इसे दूर करनेकी कृपा करें।

कपिलजीने कहा—महाराज! प्राचीन कालकी बात है, यही प्रश्न ब्रह्माजीके पुत्र रैभ्य तथा राजा वसुने बृहस्पतिसे पूछा था। पूर्वकालमें चाक्षुष मन्वन्तरमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध राजा थे, जिनका नाम था वसु। वे बड़े विद्वान् और विख्यात दानी थे। ब्रह्माजीके वंशमें उनका जन्म हुआ था। राजन्! वे महाराज वसु ब्रह्माजीका दर्शन करनेके विचारसे ब्रह्मलोकको चल पड़े। मार्गमें ही चित्ररथ नामक विद्याधरसे उनकी भेंट हो गयी। राजाने प्रेमपूर्वक चित्ररथसे पूछा—'प्रभो! ब्रह्माजीका दर्शन किस समय हो सकता है?' चित्ररथने कहा—'ब्रह्माजीके भवनमें इस समय देवताओंकी सभा हो रही है।' ऐसा सुनकर वे नरेश ब्रह्मभवनके द्वारपर ठहर गये। इतनेमें महान् तपस्वी रैभ्य भी वहीं आ गये। उनको देखकर राजा वसुके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। तदनन्तर रैभ्य मुनिकी पूजा करके राजाने उन[illegible] [illegible]हा—'मुने! आप कहाँ चल पड़े?'

[illegible]नि बोले—'महाराज! मैं देवगुरु बृहस्पतिके [illegible] रहा हूँ। किसी कार्यके विषयमें [illegible] पास चला गया था।' [illegible] [illegible]ही रहे थे कि इतनेमें

विशाल सभा विसर्जित हो गयी। सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। अतः अब बृहस्पतिजी भी वहाँ आ गये। राजा वसुने उनका स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् तीनों ही एक साथ बृहस्पतिके भवनपर गये। राजेन्द्र! वहाँ रैभ्य, बृहस्पति एवं राजा वसु—तीनों बैठ गये। सबके बैठ जानेपर देवताओंके गुरु बृहस्पतिने रैभ्य मुनिसे कहा—'महाभाग! तुम्हें तो स्वयं वेद एवं वेदाङ्गोंका पूर्ण ज्ञान है। कहो, तुम्हारा मैं कौन-सा कार्य करूँ?'

रैभ्य मुनि बोले—बृहस्पतिजी! कर्मशील और ज्ञानसम्पन्न—इन दोनोंमें कौन मोक्ष पानेका अधिकारी है? इस विषयमें मुझे संदेह उत्पन्न हो गया है। प्रभो! आप इसका निराकरण करनेकी कृपा करें।

बृहस्पतिजीने कहा—मुने! पुरुष शुभ या अशुभ जो कुछ भी कर्म करे, वह सब-का-सब भगवान् नारायणको समर्पण कर देनेसे कर्मफलोंसे लिप्त नहीं हो सकता। द्विजवर! इस विषयमें एक ब्राह्मण और व्याधका संवाद सुना जाता है। अत्रिके वंशमें उत्पन्न एक ब्राह्मण थे। उनकी वेदाभ्यासमें बड़ी रुचि थी। वे प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—त्रिकाल स्नान करते हुए तपस्या करते थे। संयमन नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। एक दिनकी बात है—वे ब्राह्मण धर्मारण्यक्षेत्रमें परम पुण्यमयी गङ्गानदीके तटपर स्नान करनेके उद्देश्यसे गये। वहाँ मुनिने निष्टुरक नामके व्याधको देखकर उसे मना करते हुए कहा—'भद्र! तुम निन्द्य कर्म मत करो।' तब मुनिपर दृष्टि डालकर वह व्याध मुस्कुराते हुए बोला—'द्विजवर! सभी जीवधारियोंमें आत्मारूपसे स्थित होकर स्वयं भगवान् ही इन जीवोंके वेशमें क्रीड़ा कर रहे हैं। जैसे माया जाननेवाला व्यक्ति मन्त्रोंका प्रयोग करके माया फैला देता है, ठीक वैसे ही यह प्रभुकी माया है, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। विप्रवर! मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे कभी भी अपने मनमें अहंभावको न टिकने दें। यह सारा संसार अपनी जीवनयात्राके प्रयत्नमें संलग्न रहता है। हाँ, इस कार्यके विषयमें 'अहम्' अर्थात् 'मैं कर्ता हूँ'—इस भावका होना उचित नहीं है।' जब विप्रवर संयमनने निष्टुरक व्याधकी बात सुनी तो वे अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर उसके प्रति यह वचन बोले—'भद्र! तुम ऐसी युक्तिसंगत बात कैसे कह रहे हो?'

ब्राह्मणकी बात सुनकर धर्मके मर्मज्ञ उस व्याधने पुनः अपनी बात प्रारम्भ की। उसने सर्वप्रथम लोहेका एक जाल बनाया। उसे फैलाकर उसके नीचे सूखी लकड़ियाँ डाल दीं। तदनन्तर ब्राह्मणके हाथमें अग्नि देकर उसने कहा—'आर्य! इस लकड़ीके ढेरमें आग लगा दीजिये।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणने मुखसे फूँककर अग्नि प्रज्वलित कर दी और शान्त होकर बैठ गये। जब आग धधकने लगी, तो वह लोहेका जाल भी गरम हो उठा। साथ ही उसमें जो गायकी आँखके समान छिद्र थे, उनमेंसे निकलती हुई ज्वाला इस प्रकार शोभा पाने लगी, मानो हंसके बच्चे श्रेणीबद्ध होकर निकल रहे हों। उस जलती हुई अग्निसे हजारों ज्वालाएँ अलग-अलग फूट पड़ीं। आग एक जगह रहनेपर भी उस लोहमय जालके छिद्रोंसे ऐसा दृश्य प्रतीत होने लगा। तब व्याधने उन ब्राह्मणसे कहा—'मुनिवर! आप इनमेंसे कोई भी एक ज्वाला उठा लें, जिससे मैं शेष ज्वालाओंको बुझाकर शान्त कर दूँ।'

इस प्रकार कहकर उस व्याधने जलती हुई आगपर जलसे भरा एक घड़ा तुरंत फेंका। फिर तो वह आग एकाएक शान्त हो गयी। सारा दृश्य पूर्ववत् हो गया। अब व्याधने तपस्वी संयमनसे कहा—'भगवन्! आपने जो जलती आग ले रखी है, वह उसी अग्निपुञ्जसे प्राप्त हुई है। उसे मुझे दे दें, जिसके सहारे मैं अपनी जीवनयात्रा सम्पन्न कर सकूँ।' व्याधके इस प्रकार कहनेपर जब ब्राह्मणने लोहेके जालकी ओर दृष्टि डाली तो वहाँ अग्नि

थी ही नहीं। वह तो पुञ्जीभूत अग्निके समाप्त होते ही शान्त हो गयी थी। तब कठोर व्रतका पालन करनेवाले संयमनकी आँखें मुँद गयी और वे मौन होकर बैठ गये। ऐसी स्थितिमे व्याधने उनसे कहा—'विप्रवर ! अभी थोड़ी देर पहले आग धधक रही थीं, ज्वालाओंका ओर-छोर नहीं था; किंतु मूलके शान्त होते ही सब-की-सब ज्वालाएँ शान्त हो गयीं। ठीक यही बात इस संसारकी भी है।

'परमात्मा ही प्रकृतिका संयोग प्राप्त करके समस्त भूत-प्राणियोंके आश्रयरूपमें विराजमान होते है। यह जगत् तो प्रकृतिमें विक्षोभ—विकार उत्पन्न होनेसे प्रादुर्भूत होता है, अतएव संसारकी यही स्थिति है।

'यदि जीवात्मा शरीर धारण करनेपर अपने स्वाभाविक धर्मका अनुष्ठान करता हुआ हृदयमें सदा परमात्मासे संयुक्त रहता है तो वह किसी प्रकारका कर्म करता हुआ भी विषादको प्राप्त नही होता।'

बृहस्पतिजीने कहा—राजेन्द्र ! निष्ठुरक व्याध और संयमन ब्राह्मणकी उपर्युक्त बातके समाप्त होते ही उस व्याधके ऊपर आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। साथ ही द्विजश्रेष्ठ संयमनने देखा कि कामचारी अनेक दिव्य विमान वहाँ पहुँच गये हैं। वे सभी विमान बड़े विशाल एवं भाँति-भाँतिके रत्नोंसे सुसज्जित थे, जो निष्ठुरकको लेने आये थे। तत्पश्चात् विप्रवर संयमनने उन सभी विमानोंमे निष्ठुरक व्याधको मनोऽनुकूल उत्तम रूप धारण करके बैठे हुए देखा। क्योंकि निष्ठुरक व्याध अद्वैत ब्रह्मका उपासक था, उसे योगकी सिद्धि सुलभ थी, अतएव उसने अपने अनेक शरीर बना लिये। यह दृश्य देखकर संयमनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपने स्थानको चले गये। अतः द्विजवर रैभ्य एवं राजा वसु ! अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार कर्म करनेवाला कोई भी व्यक्ति निश्चय ही ज्ञान प्राप्त करके मुक्तिका अधिकारी हो सकता है।

राजन् ! यह प्रसङ्ग सुनकर रैभ्य और वसुके मनमें जो संदेह था, वह समाप्त हो गया। अतः वे दोनों बृहस्पतिजीके लोकसे अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। अतएव राजेन्द्र ! तुम भी परमप्रभु भगवान् नारायणकी उपासना करते हुए अभेदबुद्धिसे उन परमप्रभु परमेश्वरकी अपने शरीरमे स्थितिका अनुभव करते रहो।

(भगवान् वराह कहते हैं—) पृथ्वि ! मुनिवर कपिलजीकी यह बात सुनकर राजा अश्वशिराने अपने यशस्वी ज्येष्ठ पुत्रको, जिसका नाम स्थूलशिरा था, बुलाया और उसे अपने राज्यपर अभिषिक्त कर वे स्वयं वनमें चले गये। नैमिषारण्य पहुँचकर, वहाँ यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणका स्तवन करते हुए उन्होंने उनकी उपासना आरम्भ कर दी।

पृथ्वी बोली—परम शक्तिशाली प्रभो ! राजा अश्वशिराने यज्ञपुरुष भगवान् नारायणकी किस प्रकार स्तुति की और वह स्तोत्र कैसा है ? यह भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—राजा अश्वशिराद्वारा यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणकी स्तुति इस प्रकार हुई—

जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, इन्द्र, रुद्र तथा वायु आदि अनेक रूपोंमें विराजमान हैं, उन यज्ञमूर्ति भगवान् श्रीहरिको मेरा नमस्कार है। जिनके अत्यन्त भयंकर दाढ है, सूर्य एवं चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, संवत्सर और दोनों अयन जिनके उदर है, कुशसमूह ही जिनकी रोमावली है, उन प्रचण्ड शक्तिशाली यज्ञस्वरूप सनातन श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश तथा सभी दिशाएँ जिनसे परिपूर्ण हैं, उन परम आराध्य,

सर्वशक्तिसम्पन्न एवं सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके कारण सनातन श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ।

जिनपर कभी देवताओं और दानवोंका प्रभुत्व स्थापित नहीं होता, जो प्रत्येक युगमें विजयी होनेके लिये प्रकट होते हैं, जिनका कभी जन्म नहीं होता, जो स्वयं जगत्की रचना करते हैं, उन यज्ञरूप-धारी परम प्रभु भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। जो महातेजस्वी श्रीहरि शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेके लिये महामायामय परम प्रकाश-युक्त जाज्वल्यमान सुदर्शनचक्र धारण करते हैं तथा शार्ङ्गधनुष एवं शङ्ख आदिसे जिनकी चारों भुजाएँ सुशोभित होती हैं, उन यज्ञरूपधारी भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

जो कभी हजार सिरवाले, कभी महान् पर्वतके समान शरीर धारण करनेवाले तथा कभी त्रसरेणुके समान सूक्ष्म शरीरवाले बन जाते हैं, उन यज्ञपुरुष भगवान् नारायणको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जिनकी चार भुजाएँ हैं, जिनके द्वारा अखिल जगत्की सृष्टि हुई है, अर्जुनकी रक्षाके निमित्त जिन्होंने हाथमें रथका चक्र उठा लिया था तथा जो प्रलयके समय कालाग्निका रूप धारण कर लेते हैं, उन यज्ञस्वरूप भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

संसारके जन्म-मरणरूप चक्रसे मुक्ति पानेके लिये जिन सर्वव्यापक पुराणपुरुष परमात्माकी मानव पूजा किया करते हैं तथा जिन अप्रमेय परम प्रभुका दर्शन योगियोंको केवल ध्यानद्वारा प्राप्त होता है, उन यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

भगवन्! जिस समय मुझे अपने शरीरमें आपके वास्तविक स्वरूपकी झाँकी प्राप्त हुई, उसी क्षण मैंने मन-ही-मन अपनेको आपके अर्पण कर दिया। मेरी बुद्धिमें यह बात भलीभाँति प्रतीत होने लगी कि जगत्में आपके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। तभीसे मेरी भावना परम पवित्र बन गयी है।

इस प्रकार राजा अश्वशिरा यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणकी स्तुति कर रहे थे। इतनेमें यज्ञवेदीसे निकलकर उनके सामने अग्निशिखाके तुल्य एक महान् तेज उपस्थित हो गया। अब इस शरीरका त्याग करनेकी इच्छासे राजा अश्वशिरा उसीमें समा गये और यज्ञपुरुष भगवान् नारायणके उस तेजोमय श्रीविग्रहमें लीन हो गये। (अध्याय ५)

पुण्डरीकाक्षपार-स्तोत्र, राजा वसुके जन्मान्तरका प्रसङ्ग तथा उनका भगवान् श्रीहरिमें लय होना

पृथ्वी बोली—भगवन्! जब बृहस्पतिकी बात सुनकर राजा वसु और महाभाग रैभ्यका संदेह दूर हो गया, तब उन लोगोंने फिर कौन-सा कार्य किया?

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! राजा वसुने अपने राज्यका पालन करते हुए पुष्कल दक्षिणावाले अनेक विशाल यज्ञोंद्वारा भगवान् श्रीहरिका यजन किया। उन्होंने देवदेवेश्वर भगवान् नारायणको यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठानद्वारा तथा सभी प्राणियोंमें अभेद-दर्शनकी साधना करके प्रसन्न कर लिया। इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर राजा वसुके मनमें राज्यका उपभोग करनेकी इच्छा निवृत्त हो गयी और उनके मनमें इस द्वन्द्वमय संसारसे मुक्त होनेकी कामना जाग उठी, अतः उन्होंने अपने सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े राजकुमार विवस्वान्को राज-सिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं तपस्या करनेके विचारसे वनमें चले गये। वे सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थमें जा पहुँचे, जहाँ भगवत्परायण पुरुषोंद्वारा पुण्डरीकाक्ष भगवान् केशवकी सदा उपासना होती रहती है। वहाँ जाकर काश्मीर-नरेश राजर्षि वसुने कठिन तपस्या-

द्वारा अपने शरीरको सुखाना प्रारम्भ कर दिया। उन परम बुद्धिमान् राजर्षिका मन शुद्धस्वरूप भगवान् नारायणकी आराधनाके लिये अत्यन्त उत्सुक था; अतः वे परम अनुरागपूर्वक 'पुण्डरीकाक्षपार' नामक स्तोत्रका जप करनेमें संलग्न हो गये। दीर्घकालतक उस स्तोत्रका जप करके महाराज वसु पुण्डरीकाक्ष भगवान् श्रीहरिमें विलीन हो गये।

पृथ्वीने पूछा—देव! इस 'पुण्डरीकाक्षपार'-स्तोत्रका स्वरूप क्या है? परमेश्वर! आप इसे मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! (राजा वसुके द्वारा अनुष्ठित पुण्डरीकाक्षपार-स्तोत्र इस प्रकार है—) पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। मधुसूदन! आपको नमस्कार है। सर्वलोकमहेश्वर! आपको नमस्कार है। तीक्ष्ण सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले श्रीहरिको मेरा बारंबार नमस्कार है। महाबाहो! आप विश्वरूप हैं, आप भक्तोंको वर देनेवाले और सर्वव्यापक हैं, आप असीम तेजोराशिके निधान हैं, विद्या और अविद्या-इन दोनोंमें आपकी ही सत्ता विलसित होती है, ऐसे आप कमलनयन भगवान् श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। प्रभो! आप आदिदेव एवं देवताओंके भी देवता हैं। आप वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत, समस्त देवताओंमें सबसे गहन एवं गम्भीर हैं। कमलके समान नेत्रोंवाले आप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवन्! आपके हजारों मस्तक हैं, हजारों नेत्र हैं और अनन्त भुजाएँ हैं। आप सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं, ऐसे आप परम प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ। जो सबके आश्रय और एकमात्र शरण लेने योग्य हैं, जो व्यापक होनेसे विष्णु एवं सर्वत्र जयशील होनेसे जिष्णु कहे जाते हैं, नीले मेघके समान जिनकी कान्ति है, उन चक्रपाणि सनातन देवेश्वर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो शुद्धस्वरूप, सर्वव्यापी, अविनाशी, आकाशके समान सूक्ष्म, सनातन तथा जन्म-मरणसे रहित हैं, उन सर्वगत श्रीहरिका मैं अभिवादन करता हूँ। अच्युत! आपके अतिरिक्त मुझे कोई भी वस्तु प्रतीत नहीं हो रही है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मुझे आपका ही स्वरूप दिखलायी पड़ रहा है*।

(भगवान् वराह कहते हैं—) राजा वसु इस प्रकार स्तोत्रपाठ कर ही रहे थे कि एक नीलवर्ण पुरुष मूर्तिमान् होकर उनके शरीरसे बाहर निकल आया, जो देखनेमें अत्यन्त प्रचण्ड एवं भयंकर प्रतीत होता था। उसके नेत्र लाल थे और वह ह्रस्वकाय पुरुष ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई जलता हुआ अंगार हो। वह दोनों हाथ जोड़कर बोला—'राजन्! मैं क्या करूँ?'

राजा वसु बोले—अरे! तुम कौन हो और तुम्हारा क्या काम है? तुम कहाँसे आये हो? व्याध! मुझे बताओ, मैं ये सब बातें जानना चाहता हूँ।

व्याधने कहा—राजन्! प्राचीनकालकी बात है; कलियुगके समय तुम दक्षिण दिशामें जनस्थान नामक प्रदेशके राजा थे। वीरवर! एक समय तुम वन्य पशुओंका शिकार करनेके लिये जंगलमें गये थे।

* नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते मधुसूदन। नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते तिग्मचक्रिणे॥
विश्वमूर्तिं महाबाहुं वरदं सर्वतेजसम्। नमामि पुण्डरीकाक्षं विद्याविद्यात्मकं विभुम्॥
आदिदेवं महादेवं वेदवेदाङ्गपारगम्। गम्भीरं सर्वदेवानां नमस्ये वारिजेक्षणम्॥
सहस्रशीर्षिणं देवं सहस्राक्षं महाभुजम्। जगत्सव्याप्य तिष्ठन्तं नमस्ये परमेश्वरम्॥
शरण्यं शरणं देवं विष्णुं जिष्णुं सनातनम्। नीलमेघप्रतीकाशं नमस्ये चक्रपाणिनम्॥
शुद्धं सर्वगतं नित्यं व्योमरूपं सनातनम्। भावाभावविनिर्मुक्तं नमस्ये सर्वगं हरिम्॥
नान्यत् किंचित् प्रपश्यामि व्यतिरिक्तं त्वयाच्युत। त्वन्मयं च प्रपश्यामि सर्वमेतच्चराचरम्॥
(अ० ६। १०-१६)

उस समय तुम्हारे पास बहुत-से घोड़े थे। यद्यपि तुम्हारा उद्देश्य हिंस्र जन्तुओंका वध करनामात्र ही था, किंतु मृगका रूप धारण कर वनमें विचरण करनेवाले एक मुनि तुम्हारे न चाहते हुए भी बाणोंके शिकार होकर भूमिपर गिर पड़े और गिरते ही चल बसे। तुम्हारे मनमें यह सोचकर बड़ा हर्ष हुआ कि एक हरिण मारा गया। किंतु जब तुमने पास जाकर देखा तो मृगरूप धारण करनेवाले वे मृतक ब्राह्मण दिखलायी पड़े। यह घटना प्रस्रवण पर्वतपर घटित हुई थी। महाराज! उस समय ब्राह्मणको मृत देखकर तुम्हारी इन्द्रियाँ और मन सब-के-सब क्षुब्ध हो उठे। तुम वहाँसे घर लौट आये। तुमने यह घटना किसी औरको भी बतला दी। राजन्! कुछ समय बीत जानेपर सहसा एक रातको ब्रह्महत्याके भयसे तुम आतङ्कित हो उठे; अतः तुमने विचार किया कि इस ब्रह्महत्याकी शान्तिके लिये मैं कोई ऐसा प्रयत्न करूँ, जिसके परिणामस्वरूप इस पापसे मुक्त हो जाऊँ। महाराज! तदनन्तर समय आनेपर भगवान् नारायणका अनवरत चिन्तन करते हुए तुमने परम पवित्र द्वादशीपर्यन्त व्याप्त शुद्ध एकादशीका उपवासपूर्वक व्रत किया। फिर दूसरे दिन तुमने "भगवान् नारायण मुझपर प्रसन्न हों", इस संकल्पके साथ विधिपूर्वक गोदान किया। इसके बाद किसी दिन उदर-शूलकी असह्य पीड़ासे तुम्हारे प्राण पखेरू उड़ गये। किंतु द्वादशीव्रत-पुण्यके होते हुए भी तुमको मुक्ति प्राप्त न हो सकी। इसका कारण मैं बताता हूँ, सुनो। तुम्हारी सौभाग्यवती रानीका नाम नारायणी था। मृत्युके समय जब तुम्हारे प्राण कण्ठमें आ गये थे, उस समय तुम्हारे मुखसे उसके नामका उच्चारण हुआ, उसीसे तुम्हें उत्तम गतिकी प्राप्ति हुई और तुमको एक कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास प्राप्त हुआ*। विष्णु-

---

*उक्त प्रकरणसे यह शङ्का होनी स्वाभाविक है कि क्या विष्णुलोकमें गमनके पश्चात् इस जन्म-मृत्युमय संसारमें लौटकर पुनः आना पड़ता है? क्योंकि भगवद्गीतामें स्वयं श्रीभगवान्ने—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' कहकर अपने परमधामको प्राप्त होनेपर जीवका इस संसारमें पुनरागमन न होनेकी घोषणा की है। इस विषयमें प्रमाणभूत ग्रन्थोंका आश्रय लेकर विचार करनेमें निम्नाङ्कित बातें प्रतीत होती हैं—

श्रीभगवान्के परम विशुद्ध वैकुण्ठधामके भी कई स्तर हैं। यद्यपि ये सभी स्तर प्राकृत प्रपञ्चसे अतीत हैं, फिर भी प्रलयकालमें इसके बाह्य अंशका प्रलय होता है, जब कि आभ्यन्तर भाग उस समय अन्तर्हित हो जाता है। राजा वसुका कल्प-पर्यन्त विष्णुलोकमें निवास वैकुण्ठके किसी बाह्य स्तरपर कल्पान्तजीवी पुरुषोंका निवास होनेकी ओर संकेत करता है। श्रीमद्भागवतसे भी इसकी पुष्टि होती है—

किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः। (७। ३। ११)

इसी कल्पान्तपर्यन्त आयुवाले लोकके ऊपर ध्रुवकी स्थिति मानी गयी है। इसी ग्रन्थमें श्रीभगवान् नारायण ध्रुवको वर देते समय कहते हैं—

नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति। यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम्॥
मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम्।

(४। ९। २०½)

भद्र! जिस तेजोमय अविनाशी लोकको आजतक किसीने प्राप्त नहीं किया, जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र और तारागण एवं ज्योतिश्चक्र उसी प्रकार चक्कर काटते रहते हैं, जिस प्रकार स्थिर मेढ़ीके चारों ओर दँवरीके बैल घूमते रहते हैं। अवान्तर कल्पपर्यन्त जीवन धारण करनेवालोंके लोकसे परे उसकी स्थिति है।

लोकमें गमन करनेके पूर्व मै तुम्हारे शरीरमें स्थित था। अतः ये सब बातें मै जानता हूँ। मै उस समय एक भयंकर ब्रह्मराक्षसके रूपमें था और तुमको अपार कष्ट देना चाहता था। इतनेमें भगवान् विष्णुके पार्षद आ गये और उन्होने मूसलोंसे मुझे मारा, जिससे मै संक्षीण होकर तुम्हारे रोमकूपोंके मार्गसे निकलकर बाहर गिर पड़ा। महाभाग ! इसके पश्चात् ब्रह्माका एक अहोरात्र— कल्पकी अवधि समाप्त होनेपर महाप्रलय हो गया। तदनन्तर सृष्टिके आरम्भ होनेपर इस कल्पमें तुम काश्मीरके राजा सुमनाके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए हो। इस जन्ममें भी मै तुम्हारे शरीरमें रोमकूपोके मार्गसे पुनः प्रविष्ट हो गया। तुमने इस जन्ममें भी प्रभूत दक्षिणावाले अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया; किंतु ये सभी यज्ञजनित पुण्य मुझे तुम्हारे शरीरसे बाहर निकालनेमें असमर्थ रहे; क्योंकि इनमें भगवान् विष्णुका नाम उच्चरित न हुआ था। अब जो तुमने इस 'पुण्डरीकाक्षपार' स्तोत्रका पाठरूप अनुष्ठान किया है, इसके प्रभावसे तुम्हारे शरीरसे मै रोमकूपोके मार्गसे बाहर आ गया हूँ। राजेन्द्र ! मै वही ब्रह्मराक्षस अब व्याध बनकर पुनः प्रकट हुआ हूँ। पुण्डरीकाक्ष भगवान् नारायणके इस स्तोत्रके सुननेके प्रभावसे पहले जो मेरी पापमयी मूर्ति थी, वह अब समाप्त हो गयी। मैं उससे अब मुक्त हो गया। राजन् ! अब मेरी बुद्धिमें धर्मका उदय हो गया है।

यह प्रसङ्ग सुनकर महाराज वसुके मनमें आश्चर्यकी सीमा न रही। फिर तो बड़े आदरके साथ वे उस व्याधसे बात करने लगे।

राजा वसुने कहा—व्याध ! जैसे तुम्हारी कृपासे आज मुझे अपने पूर्वजन्मकी बात याद आ गयी, वैसे ही तुम भी मेरे प्रभावसे अब व्याध न कहलाकर धर्म-व्याधके नामसे प्रसिद्ध होओगे। जो पुरुष इस 'पुण्डरी-काक्षपार' नामक उत्तम स्तोत्रका श्रवण करेगा, उसे भी पुष्कर क्षेत्रमें विधिपूर्वक स्नान करनेका फल सुलभ होगा।

भगवान् वराह कहते हैं—जगद्धात्रि पृथ्वि ! राजा वसु धर्मव्याधसे इस प्रकार कहकर एक परम उत्तम विमानपर आरूढ़ हुए और भगवान् नारायणके लोकमें जाकर उनकी अनन्त तेजोराशिमें विलीन हो गये। (अध्याय ६)

इसी प्रकार सनकादि महर्षियोंके वैकुण्ठलोक-गमनके समय वैकुण्ठके छः स्तरोंको पार करके सप्तम स्तरपर उन्हें जय-विजय आदि भगवत्पार्षदोंके दर्शन होते हैं—

तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम्।
देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥

(श्रीमद्भा० ३ । १५ । २७)

भगवद्दर्शनकी लालसासे अन्य दर्शनीय सामग्रीकी उपेक्षा करते हुए वैकुण्ठधामकी छः ड्योढ़ियाँ पार कर जब वे सातवींपर पहुँचे तो वहाँ उन्हे हाथमें गदा लिये दो समान आयुवाले देवश्रेष्ठ दिखलायी दिये जो बाजूबंद, कुण्डल और किरीट आदि अनेकों अमूल्य आभूषणोंसे अलंकृत थे।

वैकुण्ठलोकके स्तरभेदके समान मुक्तिके भी स्तर-भेद हैं। मृत्युके साथ ही भगवान्‌के परमधाममें प्रवेश किया जाता है अथवा मृत्युके बाद कई स्तरोंमें होते हुए भी वहाँ पहुँचा जाता है। यह दूसरे प्रकारकी गति भी परमा गति ही है। कारण, इस स्तरसे अधोगति नहीं होती, क्रमशः ऊर्ध्वगति ही होती है और अन्तमे परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। तथापि यह परमा गति होनेपर भी है अपेक्षाकृत निम्न अधिकारीके लिये ही।

राजा वसुको भी वासनाक्षय न होनेके कारण सद्योमुक्ति नहीं प्राप्त हुई। उनके द्वारा प्राण-त्यागके समय रानी नारायणीका नामोच्चारण होनेसे उसके फलस्वरूप उनको कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें वास प्राप्त होकर जन्मान्तरमे वासना एवं तज्जनित पापक्षयके द्वारा परम ज्योतिमे लीन होनेका वर्णन उनकी क्रममुक्ति प्राप्त होनेकी सूचना देता है।

रैभ्य-सनत्कुमार-संवाद, गयामें पिण्डदानकी महिमा एवं रैभ्य मुनिका ऊर्ध्वलोकमें गमन

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! मुनिवर रैभ्यने राजा वसुके सिद्धि प्राप्त होनेकी बातको सुनकर क्या किया ? इस विषयमें मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। आप उसे शान्त करनेकी कृपा करें।

भगवान् वराहने कहा—पृथ्वि ! तपोधन रैभ्यमुनिने जब राजा वसुके सिद्धि प्राप्त होनेकी बात सुनी तो वे पवित्र पितृतीर्थ गया जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने भक्तिपूर्वक पितरोंके लिये पिण्डदान किया। इस प्रकार पितरोंको तृप्त करके उन्होंने अत्यन्त कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। परम मेधावी रैभ्यके इस प्रकार दुष्कर तपका आचरण करते समय एक महायोगी विमानपर आरूढ़ होकर उनके पास पधारे। उनका शरीर तेजसे देदीप्यमान था। उन महायोगीका वह परम उज्ज्वल विमान सूर्यके समान उद्भासित हो रहा था। त्रसरेणुके समान सूक्ष्म उस विमानपर विराजमान वह तेजोमय पुरुष भी आकारमें परमाणुके तुल्य प्रतीत होता था।

उस तेजोमय पुरुषने कहा—'सुव्रत ! तुम किस प्रयोजनसे इतनी कठिन तपस्या कर रहे हो ?' इतना कहकर वह दिव्य पुरुष बढ़ने लगा और उसने अपने शरीरसे पृथ्वी एवं आकाशके मध्यभागको व्याप्त कर लिया। सूर्यके समान देदीप्यमान उसके विमानने भी सम्पूर्ण भूगोल और खगोलको एवं साथ-ही-साथ विष्णुलोकको भी व्याप्त कर लिया। तब रैभ्यने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर उस योगीसे पूछा—'योगीश्वर ! आप कौन हैं ? मुझे बतानेकी कृपा करें।'

उस तेजोमय पुरुषने कहा—रैभ्य ! मैं ब्रह्माजीका मानस पुत्र सनत्कुमार हूँ। रुद्र मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं। मेरा जनलोकमें निवास है। तपोधन ! तुम्हारे पास प्रेमके वशीभूत होकर मैं आया हूँ। वत्स ! तुमने ब्रह्माजीकी सृष्टिका विस्तार किया है। तुम धन्य हो !

मुनिवर रैभ्यने पूछा—योगिराज ! आपको मेरा नमस्कार है। यह सारा विश्व आपका ही रूप है। आप प्रसन्न हों और मुझपर दया करें। योगीश्वर ! कहिये, मैं आपके लिये क्या करूँ ? अभी आपने मुझे जो धन्य कहा है, इसका क्या रहस्य है ?

सनत्कुमारजीने कहा—रैभ्य ! तुमने गयातीर्थमें जाकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक पिण्ड-दानके द्वारा पितरोंको तृप्त किया है, श्राद्धकर्मके अङ्ग-भूत व्रत, जप एवं हवनकी विधि भी तुमने सम्पन्न की है, अतएव तुम ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तथा धन्यवादके पात्र हो। इस विषयमें एक आख्यान है, वह मुझसे सुनो। विशाल नामसे विख्यात पहले एक राजा हो चुके हैं। उनके नगरका नाम भी विशाल ही था। वे राजा निःसंतान थे, इससे शत्रुओंको पराजित करनेवाले उन परम धैर्यशाली राजा विशालके मनमें पुत्रप्राप्तिकी इच्छा हुई। अतः उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे पुत्र-प्राप्तिका उपाय पूछा। उन उदारचेता ब्राह्मणोंने कहा—'राजन् ! तुम पुत्र-प्राप्तिके निमित्त गयामें जाकर पुष्कल अन्नदान करके पितरोंको तृप्त करो। ऐसा करनेसे तुम्हें अवश्य ही पुत्र प्राप्त होगा। वह महान् दानी एवं सम्पूर्ण भूमण्डलपर शासन करनेवाला होगा।'

ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर विशाल-नरेशके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हर्षसे खिल उठे। तदनन्तर सूर्य जब मघा नक्षत्रपर आये, उस समय प्रयत्नपूर्वक गयातीर्थमें जाकर उन नरेशने विधि-विधानके साथ भक्तिपूर्वक पितरोंके लिये पिण्डदान किया। सहसा उन्होंने आकाशमें श्वेत, रक्त एवं कृष्ण वर्णके तीन श्रेष्ठ पुरुषोंको देखा। उनको देखकर राजाने पूछा—'आपलोग कौन हैं ?'

श्वेत पुरुषने कहा—राजन् ! मै तुम्हारा पिता सित हूँ । मेरा नाम तो सित है ही, मेरे शरीरका वर्ण भी सित (श्वेत) है, साथ ही मेरे कर्म भी सित (उज्ज्वल) हैं । (मेरे साथ) ये जो लाल रंगके पुरुष दिखायी देते हैं, मेरे पिता हैं । इन्होने बडे निष्ठुर कर्म किये हैं । ये ब्रह्महत्यारे और पापाचारी रहे हैं और इनके बाद ये जो तीसरे सज्जन है, ये तुम्हारे प्रपितामह हैं । इनका नाम अधीश्वर है । ये कर्म और वर्णसे भी कृष्ण है । इन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक वयोवृद्ध ऋषियोंका वध किया है । ये दोनों पिता और पुत्र अवीचि नामक नरकमें पड़े हुए हैं; अतः ये मेरे पिता और ये दूसरे इनके पिता जो दीर्घकालतक काले मुखसे युक्त हो नरकमें रहे है और मैं, जिसने अपने शुद्ध कर्मके प्रभावसे इन्द्रका परम दुर्लभ सिंहासन प्राप्त किया था—तुझ मन्त्रज्ञ पुत्रके द्वारा गयामें पिण्डदान करनेसे—तीनो ही बलात् मुक्त हो गये । शत्रुदमन ! पिण्डदानके समय 'मैं अपने पिता, पितामह और प्रपितामहको तृप्त करनेके लिये यह जल देता हूँ'—ऐसा कहकर जो तुमने जल दिया है, उसीके प्रभावसे हमलोग यहाँ एक साथ एकत्र होकर तुम्हारे समक्ष वार्तालाप कर सके हैं । अब मै इस गया-तीर्थके प्रभावसे पितृ-लोकमें जा रहा हूँ । इस तीर्थमें पिण्डदान करनेके माहात्म्यसे ही ये तुम्हारे पितामह और प्रपितामह, जो पापी होनेके कारण दुर्गतिको प्राप्त हो चुके थे एवं जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग विकृत हो चुके थे, वे भी अब उत्तम लोकोंको प्राप्त हो रहे हैं । यह इस गयातीर्थका ही प्रताप है कि यहाँ पिण्डदान करनेके प्रभावसे पुत्र अपने ब्रह्मघाती पिताका भी पुनः उद्धार कर सकता है । वत्स ! इसी कारण मै इन दोनों—तुम्हारे [illegible] और प्रपितामहको लेकर तुम्हें देखनेके [illegible] गया हूँ ।

(सनत्कुमारजी कहते हैं—) महाभाग यही कारण है कि मैने तुमको धन्य कहा है । एक बार जाना और पिण्डदान करना ही दुर्लभ है । फिर तुम तो प्रतिदिन यहाँ इस उत्तम कार्यका सम्पादन करते हो । मुनिवर ! तुमने गदाधररूपमें विराजमान साक्षात् भगवान् नारायणका दर्शन कर लिया है । तुम्हारे इस पुण्यके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय ? द्विजवर ! इस गयाक्षेत्रमें भगवान् गदाधर सदा साक्षात् विराजते है । इसी कारण सम्पूर्ण तीर्थोंमें यह विशेष प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है ।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! ऐसा कहकर महायोगी सनत्कुमारजी वहीं अन्तर्धान हो गये । अब मुनिवर रैभ्यने भगवान् गदाधरकी इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की ।

विप्रवर रैभ्य बोले—देवता जिनका स्तवन करते रहते हैं, जो क्षमाके धाम हैं, जो क्षुधाग्रस्त आर्तजनोंके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं, जो विशाल नामक दैत्यकी सेनाओंका मर्दन करनेवाले हैं तथा जो स्मरण करनेसे समस्त अशुभोंका विनाश कर देते हैं, उन मङ्गलमय भगवान् गदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ । जो पूर्वजोंके भी पूर्वज, पुराण पुरुष, स्वर्गलोकमें पूजित एवं मनुष्योंके एकमात्र परम आश्रय हैं, जिन्होंने वामन अवतार ग्रहण करके दैत्यराज बलिके चंगुलसे पृथ्वीका उद्धार किया है, उन महाबलशाली शुद्धस्वरूप भगवान् गदाधरको मैं एकान्तमें नमस्कार करता हूँ । जो परम शुद्ध स्वभाववाले एवं अनन्त वैभव-सम्पन्न हैं, लक्ष्मीने जिनका स्वयं वरण किया है, जो अत्यन्त निर्मल एवं [illegible] हैं तथा पवित्र अन्तः-[illegible] भूपाल जिनका स्तवन करते हैं, ऐसे भगवान् [illegible]को जो प्रणाम करता है, वह जगत्में सुखसे [illegible]का अधिकारी होता है । देवता [illegible] चरणकमलोंकी अर्चना करते हैं, [illegible] एवं किरीट धारण [illegible]

समुद्रमें शयन करते हैं, उन चक्रधारी भगवान् गदाधरकी जो वन्दना करता है, वही जगत्‌में सुखपूर्वक रहनेका अधिकारी है। जो भगवान् अच्युत सत्ययुगमें श्वेत, त्रेतामें अरुण, द्वापरमें पीत-वर्णसे अनुरञ्जित श्याम तथा कलियुगमें भौंरेके समान कृष्णवर्णयुक्त विग्रह धारण करते हैं, उन भगवान् गदाधरको जो प्रणाम करता है, वह जगत्‌में सुखपूर्वक निवास करता है। जिनसे सृष्टिके बीजरूप चतुर्मुख ब्रह्माका प्राकट्य हुआ है तथा जो नारायण विष्णुरूप धारण करके जगत्‌का पालन और रुद्ररूपसे संहार करते हैं एवं इस प्रकार जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—इन तीन मूर्तियोंमें विलसित होते हैं, उन भगवान् गदाधरकी जय हो। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंका संयोग ही विश्वकी सृष्टिमें कारण बतलाया जाता है; किंतु इस प्रकार जो एक होकर भी इन तीन गुणोंके रूपमें अभिव्यक्त होते हैं, वे भगवान् गदाधर धर्म एवं मोक्षकी कामनासे अधीर हुए मुझको धैर्य प्रदान करनेकी कृपा करें। जिस दयामय प्रभुने दुःखरूपी जल-जन्तुओं एवं मृत्युरूप ग्राहके भयंकर आक्रमणोंसे संसार-सागरमें थपेड़े खाकर डूबते हुए मुझ दीन-हीन प्राणीका विशाल जलपोत बनकर उद्धार कर दिया, उन भगवान् गदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो स्वयं महाकाशमें घटाकाशकी व्याप्तिकी भाँति अपने द्वारा अपनेमें ही तीन मूर्तियोंमें अभिव्यक्त होते हैं तथा अपनी मायाशक्तिका आश्रय लेकर इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं एवं उसीमें कमलासन ब्रह्माके रूपमें प्रकटित होकर तेजस् आदि तत्त्वोंका प्रादुर्भाव करते हैं, उन जगदाधार भगवान् गदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मत्स्य-कच्छप आदि अवतार ग्रहण करके देवताओंकी रक्षा करते हैं, जिनकी जगत्‌में 'वृषाकपि' के नामसे प्रसिद्धि है, वे यज्ञवराहरूपी भगवान् गदाधर मुझे सद्गति प्रदान करें।*

---

* गदाधरं विबुधजनैरभिष्टुतं धृतक्षमं क्षुधितजनार्तिनाशनम्।
शिवं विशालासुरसैन्यमर्दनं नमाम्यहं हृतसकलाशुभं स्मृतौ॥
पुराणपूर्वं पुरुषं पुरुष्टुतं पुरातनं विमलमलं नृणां गतिम्।
त्रिविक्रमं हृतधरणिं बलोर्जितं गदाधरं रहसि नमामि केशवम्॥
विशुद्धभावं विभवैरुपावृतं श्रिया वृतं विगतमलं विचक्षणम्।
क्षितीश्वरैरपगतकिल्बिषैः स्तुतं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥
सुरासुरैरर्चितपादपङ्कजं केयूरहाराङ्गदमौलिधारिणम्।
अब्धौ शयानं च रथाङ्गपाणिनं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥
सितं कृते त्रेतयुगेऽरुणं विभुं तथा तृतीयेऽसितवर्णमच्युतम्।
कलौ युगेऽलिप्रतिमं महेश्वरं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥
बीजोद्भवो यः सृजते चतुर्मुखं तथैव नारायणरूपतो जगत्।
प्रपालयेद् रुद्रवपुस्तथान्तकृद्गदाधरो जयतु षडर्द्धमूर्तिमान्॥
सत्त्वं रजश्चैव तमो गुणास्त्रयस्त्वेतेषु विश्वस्य समुद्भवः किल।
स चैक एव त्रिविधो गदाधरो दधातु धैर्यं मम धर्ममोक्षयोः॥
संसारतोयार्णवदुःखतन्तुभिर्वियोगनक्रक्रमणैः सुभीषणैः।
मज्जन्तमुच्चैः सुतरां महाप्लवो गदाधरो मामुदधौ तु योऽतरत्॥
स्वयं त्रिमूर्तिः स्वमिवात्मनात्मनि स्वशक्तितश्चाण्डमिदं ससर्ज ह।
तस्मिञ्जलोत्थासनमाप तैजसं ससर्ज यस्तं प्रणतोऽस्मि भूधरम्॥
मत्स्यादिनामानि जगत्सु चाश्नुते सुरादिसंरक्षणतो वृषाकपिः।
मखस्वरूपेण स संततो विभुर्गदाधरो मे विदधातु सद्गतिम्॥ (अध्याय ७। ३१—४०)

भगवान् मत्स्य

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! मुनिवर रैभ्य महान् बुद्धिमान् थे। जब उन्होंने इस प्रकार भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति की तो भगवान् गदाधर सहसा उनके सामने प्रकट हो गये। उनका श्रीविग्रह पीताम्बरसे शोभायमान था। वे गरुडपर स्थित थे तथा उनकी भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्मसे अलंकृत थीं। वे भगवान् पुरुषोत्तम आकाशमें ही स्थित रहकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—'द्विजवर रैभ्य ! तुम्हारी भक्ति, स्तुति एवं तीर्थ-स्नानसे मैं संतुष्ट हो गया हूँ। अब तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वह मुझसे कहो।'

रैभ्यने कहा—देवेश्वर ! अब मुझे उस लोकमें निवास प्रदान कीजिये, जहाँ सनक-सनन्दन आदि मुनिजन रहते हैं। भगवन् ! आपकी कृपासे मैं उसी लोकमें जाना चाहता हूँ।

श्रीभगवान् बोले—'विप्रश्रेष्ठ ! बहुत ठीक, ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। फिर तो प्रभुके कृपाप्रसादसे उसी क्षण रैभ्यको दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया और वे परम सिद्ध सनकादि महर्षि जहाँ निवास करते हैं, उस लोकको चले गये।

भगवान् श्रीहरिका यह 'गदाधर-स्तोत्र' रैभ्य मुनिके मुखसे उच्चरित हुआ है। जो मनुष्य गयातीर्थमें जाकर इसका पाठ करेगा; उसे पिण्डदानसे भी बढ़कर फलकी प्राप्ति होगी। (अध्याय ७)

भगवान्‌का मत्स्यावतार तथा उनकी देवताओंद्वारा स्तुति

पृथ्वीने पूछा—प्रभो ! सत्ययुगके आरम्भमें विश्वात्मा भगवान् नारायणने कौन-सी लीला की ? वह सब मैं भलीभाँति सुनना चाहती हूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! सृष्टिके पूर्व-कालमें एकमात्र नारायण ही थे। उनके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था। एकाकी होनेसे उनका रमण—आनन्द-विलास नहीं हो रहा था। वे प्रभु समस्त कर्मोंके सम्पादन-में स्वतन्त्र हैं। जब उनको दूसरेकी इच्छा हुई, तो उनसे अभावसंज्ञक ज्ञानमय संकल्पकी उत्पत्ति हुई। क्षणभरमें ही उनका वह सृष्टिरचनाका संकल्प सूर्यके समान उद्भासित हो उठा। उसके फिर दो भाग हुए, जिनमें पहली ब्रह्मवादियोंद्वारा चिन्तनीय ब्रह्मविद्या थी, जो उमा नामसे प्रसिद्ध हुईं। ये ही मनुष्योंमें सदा श्रद्धाके रूपमें निवास करती हैं। दूसरी ॐकारद्वारा वाच्य एकाक्षरी विद्या प्रकटित हुई। तदनन्तर उसीने इस भूलोककी रचना की। भूलोककी रचना करनेके पश्चात् उसने भुवर्लोक एवं स्वर्लोकका निर्माण किया। तत्पश्चात् क्रमशः महर्लोक तथा जनलोककी सृष्टि करके वह प्रणवात्मिका विद्या अपने द्वारा रचित इस सृष्टिमें अन्तर्हित हो गयी और धागेमें पिरोये हुए मणियोंके समान वह सबमें ओतप्रोत हो गयी। इस प्रकार प्रणवसे जगत्की रचना तो हो गयी, किंतु यह नितान्त शून्य ही रहा। भगवान्‌की यह जो शिवमूर्ति है, वे स्वयं श्रीहरि ही हैं। इन लोकोंको शून्य देखकर उन परम प्रभुने एक परमोत्तम श्रीविग्रहमें अभिव्यक्त होनेकी इच्छा की और अपने मनोधाममें क्षोभ उत्पन्न करके अपने अभिलषित आकारमें अभिव्यक्त हो गये। इस प्रकार ब्रह्माण्डका आकार व्यक्त हुआ। फिर वह ब्रह्माण्ड दो भागोंमें विभक्त हुआ; इसमें जो नीचेका भाग था, वह भूलोक बना, ऊपरका खण्ड भुवर्लोक हुआ, जो मध्यवर्ती लोकोंके अन्तरालमें सूर्यके समान प्रकाशमान हो गया। पूर्वकल्पके समान महा-सिन्धुमें कमलकोशका उसी भाँति प्रादुर्भाव हो गया और देवाधिदेव नारायणने प्रजापति ब्रह्माके रूपमें प्रकटित होकर अकारसे लेकर हकारपर्यन्त समस्त स्वर एवं व्यञ्जन वर्णोंकी सृष्टि कर दी।

इस प्रकार अमूर्त सृष्टिकी रचना हो जानेपर श्रीभगवान्‌ने चारों वेदोका गान प्रारम्भ किया। इस प्रकार लोकोंकी सृष्टि करनेके पश्चात् अपरिमेय शक्तिशाली प्रभुके मनमें जगत्‌के धारण-पोषणकी चिन्ता हुई और चिन्तन करते ही उनके नेत्रोंसे महान् तेज निकला। उनके दक्षिण नेत्रसे निकला हुआ तेज अग्निके समान उष्ण और वाम नेत्रसे प्रादुर्भूत तेज हिमके समान शीतल था। भगवान् श्रीहरिने उनको सूर्य और चन्द्रमाके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया। फिर उन विराट् पुरुषसे जगत्‌का प्राणरूप वायु प्रकट हुआ। ये ही वायुदेवता आज भी हम सबके हृदयमें प्राणरूपसे व्याप्त है। तत्पश्चात् उसी वायुसे अग्निका प्रादुर्भाव हुआ। अग्निसे जलतत्त्व उत्पन्न हुआ। जो वह अग्नितत्त्व उत्पन्न हुआ, वही परब्रह्म परमात्माका तेज है और वही मूर्त सृष्टिका परम कारण बना। विराट् पुरुषने इसी तेजसम्पन्न अपनी भुजाओंसे क्षत्रिय जातिकी, जाँघोंसे वैश्य जातिकी और पैरोंसे शूद्रजातिकी रचना की। फिर उन परमेश्वरने यक्षों और राक्षसोंका सृजन किया। तदनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रभृति मानवोंसे भूर्लोकको तथा आकाशमें विचरण करनेवाले प्राणियोंसे भुवर्लोकको भर दिया। अपने पुण्योके फलस्वरूप स्वर्गका अर्जन करनेवाले भूत-प्राणियोंसे स्वर्लोकको एवं सनकादि ऋषि-मुनियोंसे महर्लोकको परिपूरित कर दिया।

विराट् परमात्माकी हिरण्यगर्भके रूपमें उपासना करनेवालोंसे उन्होंने जनलोकको भर दिया और तपोनिष्ठ देवताओंसे तपोलोकको पूर्ण कर दिया। सत्यलोकको उन देवताओंसे परिपूर्ण किया, जो मरणधर्मा नही थे।

इस प्रकार भूतभावन भगवान् श्रीहरिने सृष्टिकी रचना सम्पन्न कर दी। परमेश्वरके संकल्पसे इस जगत्‌की रचना होनेके कारण ही सृष्टिको कल्प कहा जाता है। फिर भगवान् नारायण रात्रिकल्पके आनेपर निद्रामग्न हो गये। उनके सो जानेपर ये तीनों लोक भी प्रलयको प्राप्त हो गये। जब रात्रि समाप्त हो गयी, तब कमलनयन भगवान् श्रीहरि जाग उठे और उन्होंने पुनः चारों वेदों तथा उनकी स्वरूपभूता मातृकाओंका चिन्तन किया, किंतु योगनिद्राजनित अज्ञानसे मोहित हुए देवदेवेश्वर श्रीहरिको लोकमर्यादाओंको स्थिर करनेके लिये वेद उपलब्ध नही हुए। उन्होने देखा—उनके ही आत्मस्वरूप जलमें वेद डूबे हुए हैं। अब उन्हें वेदोंके उद्धारकी चिन्ता हुई; अतएव तत्काल मत्स्यके रूपमें अवतरित होकर सागरकी विशाल जलराशिको क्षुब्ध करते हुए उसमें प्रविष्ट हो गये।

मत्स्यमूर्ति श्रीहरि महासिन्धुके अगाध जलसमूहमें प्रवेश करते ही महान् पर्वताकार रूपमें प्रकाशित हो उठे। इस प्रकार उन देवश्रेष्ठके मत्स्यावतार ग्रहण करनेपर देवता उत्तम स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे—'मत्स्यरूप धारण करनेवाले भगवान् नारायण! वेदोंके अतिरिक्त अन्य शास्त्रोंके पारगामी पुरुषोंके लिये भी आप अगम्य हैं, यह सारा विश्व आपका ही अङ्ग है। आप अत्यन्त मधुर स्वरमें वेदोंका गान करते हैं, विद्या और अविद्या दोनों आपके रूप हैं, आपको हमारा बारंबार नमस्कार है। आपके अनेक रूप हैं, चन्द्र और सूर्य आपके सुन्दर नेत्र हैं। प्रलयकालीन समुद्र जब सम्पूर्ण विश्वको आप्लावित कर लेता है, उस समय भी आप स्थित रहते है। विष्णो! आपको प्रणाम है। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं, आप इस मत्स्य-शरीरका त्याग कर हमारी रक्षा करनेकी कृपा करें। अनन्त रूप धारण करनेवाले प्रभो! सारा संसार आपसे ही व्याप्त है। आपके अतिरिक्त इस जगत्‌में कुछ है ही नहीं और न इस जगत्‌के अतिरिक्त आप अव्यक्तमूर्तिकी कोई दूसरी मूर्ति ही है। इसीलिये हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। पुण्डरीकाक्ष! यह आकाश आप पुराणपुरुषका आत्मा है, चन्द्रमा आपके मन और अग्नि मुख हैं। देवाधिदेव

शम्भो ! यह सारा जगत् आपसे ही प्रकाशित है । यद्यपि हमलोग आपकी भक्तिसे रहित है तो भी आप हमें क्षमा करनेकी कृपा करें । देवेश्वर ! आप सम्पूर्ण जगत्के आश्रय है, आप सनातन पुरुषके मधुरभाषी सुन्दर स्वरयुक्त दिव्य रूपसे इस पर्वताकार विग्रहका कोई मेल ही नहीं है। अच्युत ! आपके सूर्यसे भी अधिक तीव्रतेजसे हमलोग संतप्त हो रहे है, अतएव आप अपने इस रूपका संवरण कर लीजिये । भगवन् ! हमलोग आपकी शरणमें आये है; क्योंकि आपको इस रूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करते देखकर हमारा मन भयभीत हो उठा है । आज आपको पूर्व रूपमें न पाकर आपसे हीन हुए हमलोगोको ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे हमारे शरीरोमें आत्मा ही न रह गया हो ।' देवताओके इस प्रकार स्तुति करनेपर मत्स्यरूपी भगवान् नारायणने जलमें निमग्न हुए उपनिषदों और शास्त्रोंसहित वेदोका उद्धार कर दिया । इसके पश्चात् उन्होंने अपने नारायण रूपमें स्थित होकर देवताओंको सान्त्वना प्रदान की । भगवान् नारायण जबतक सगुण-साकार रूपमें स्थित रहते है, तभीतक इस संसारकी सत्ता रहती है । उनके अपने निर्गुण-निराकार रूपमें स्थित हो जानेपर संसारका प्रलय हो जाता है और उनमें इच्छारूप विक्रिया उत्पन्न होनेपर जगत्की सृष्टि पुनः प्रारम्भ हो जाती है । (अध्याय ९)

राजा दुर्जयके चरित्र-वर्णनके प्रसङ्गमें मुनिवर गौरमुखके आश्रमकी शोभाका वर्णन

पृथ्वि ! सत्ययुगकी बात है । सुप्रतीक नामसे प्रसिद्ध एक महान् पराक्रमी राजा थे । उनकी दो रानियाँ थी । वे दोनो परम मनोरम रानियाँ किसी बातमें एक दूसरीसे कम न थीं । उनमें एकका नाम विद्युत्प्रभा और दूसरीका कान्तिमती था । दो रानियोंके होते हुए भी उन शक्तिशाली नरेशको किसी संतानकी प्राप्ति न हुई । तब राजा सुप्रतीक पर्वतोंमें श्रेष्ठ चित्रकूट पर्वतपर गये । वहाँ जाकर उन्होंने सर्वथा निष्पाप अत्रिनन्दन दुर्वासाकी विधिपूर्वक आराधना की । वर-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले राजा सुप्रतीकके बहुत समय-तक यत्नपूर्वक सेवा करनेपर वे ऋषि प्रसन्न हो गये । राजाको वर देनेके लिये उद्यत होकर वे मुनिवर कुछ कह ही रहे थे, तबतक ऐरावत हाथीपर चढे हुए देवराज इन्द्र वहाँ पहुँच गये । वे चारो ओर देवसेनासे घिरे हुए थे । वे वहाँ आकर चुपचाप खड़े हो गये । महर्षि दुर्वासा देवराज इन्द्रके प्रति स्नेह रखते थे; किंतु इन्द्रको अपने प्रति प्रीतिका प्रदर्शन न करते देखकर वे क्रुद्ध हो उठे और उन अत्रिनन्दनने देवराज इन्द्रको अत्यन्त कठोर शाप दे दिया—'अरे मूर्ख देवराज ! तुमने मेरा जो अपमान किया है, इसके फलस्वरूप तुम्हे अपने राज्यसे च्युत हो दूसरे लोकमें जाकर निवास करना होगा ।' देवेन्द्रसे इस प्रकार कहकर उन क्रुद्ध मुनिने राजा सुप्रतीकसे कहा—'राजन् ! तुम्हे एक अत्यन्त बलवान् पुत्र प्राप्त होगा । वह इन्द्रके समान रूपवान्, श्रीसम्पन्न, महाप्रतापी, विद्याके प्रभाव और तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाला होगा। पर उसके कर्म क्रूर होंगे । वह सदैव शस्त्रोसे सन्नद्ध रहेगा और वह परम शक्तिशाली बालक राजा दुर्जयके नामसे प्रसिद्ध होगा ।'

इस प्रकार वर देकर मुनिवर दुर्वासा अन्यत्र चले गये । राजा सुप्रतीक भी अपने राज्यको वापस लौट आये । धर्मज्ञ राजाने अपनी रानी विद्युत्प्रभाके उदरमें गर्भाधान किया । रानीके समय आनेपर प्रसव हुआ । उस महाबली पुत्रकी दुर्जय नामसे प्रसिद्धि हुई । उसके जन्मके अवसरपर दुर्वासा मुनि पधारे और उन्होने स्वयं उस बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये । साथ ही उन महर्षिने अपने तपोबलसे उस बालकके स्वभावको

भी सौम्य बना दिया तथा उसको वेदशास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, धर्मात्मा एवं परमपवित्र बना दिया ।

राजा सुप्रतीककी जो दूसरी सौभाग्यवती पत्नी थी, जिसका नाम कान्तिमती था, उसके भी सुद्युम्न नामक एक पुत्र हुआ । वह भी वेद और वेदाङ्गका पूर्ण विद्वान् हुआ । भामिनि ! महाराज सुप्रतीककी राजधानी वाराणसीमे थी । एक बार उनका पुत्र दुर्जय पासमे बैठा हुआ था । उस समय उसे परम योग्य देखकर तथा अपनी वृद्धावस्थापर दृष्टिपात करके राजा उसे ही राज्य सौंप देनेका विचार करने लगे । फिर भलीभाँति विचार करके उन धर्मात्मा नरेशने अपना राज्य राजकुमार दुर्जयको सौंप दिया और वे स्वयं चित्रकूट नामक पर्वतपर चले गये ।

इधर राजा दुर्जय भी राज्यके प्रबन्धमें लग गया । यद्यपि उसका राज्य विशाल था; फिर भी वह हाथी, घोड़े एवं रथ आदिसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना सजाकर राज्य बढ़ानेकी चिन्तामे पड़ गया । राजा दुर्जय परम मेधावी था । उसने सम्यक् प्रकारसे विचार करके हाथी, घोड़े एवं रथपर बैठकर युद्ध करनेवाले वीरों तथा पैदल सैनिकोंसे अपनी सेना तैयार की और सिद्ध पुरुषों एवं महात्माजनोंद्वारा सेवित उत्तर दिशाके लिये प्रस्थान किया । राजा दुर्जयने क्रमशः इसी प्रकार सम्पूर्ण भारतपर विजय प्राप्त कर किम्पुरुष नामक वर्षको भी जीत लिया । तदनन्तर उसने परवर्ती हरिवर्षमे भी अपनी विजय-पताका फहरा दी । फिर रम्यक, रोमावृत, कुरु, भद्राश्व और इलावृत नामसे प्रसिद्ध वर्षोंपर भी उसका शासन स्थापित हो गया । यह सारा स्थान सुमेरु पर्वतका मध्यवर्ती भाग है ।

इस प्रकार जब राजा दुर्जयने सम्पूर्ण जम्बूद्वीपपर अपना अधिकार कर लिया, तब वह देवताओंके सहित इन्द्रको भी जीतनेके लिये आगे बढ़ा । सुमेरुपर्वतपर जाकर उसने वहाँ अनेक देवता, गन्धर्व, दानव, गुह्यक, किंनर और दैत्योंको भी परास्त किया । तब-तक ब्रह्मापुत्र नारदजीने दुर्जयकी विजयके विषयमें देवराज इन्द्रको सूचना दे दी । देवराज उसी क्षण लोकपालोंको साथ लेकर उसका वध करनेके लिये चल पडे । किंतु राजा दुर्जयके शस्त्रोंके सामने उन्होंने जल्दी ही घुटने टेक दिये । तदनन्तर देवराज इन्द्र सुमेरु पर्वतको छोड़कर मर्त्यलोकमें आ बसे और वे लोकपालोंके साथ पूर्वदिशामें रहने लगे । राजा दुर्जयके चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया जायगा ।

जब देवताओंने अपनी हार मान ली तो राजा दुर्जय वापस लौटा और लौटते समय गन्धमादन पर्वतकी तलहटीमे उसने अपनी सेनाओंकी छावनी डाली । जब उसने छावनीकी सारी व्यवस्था कर ली, तब उसके पास दो तपस्वी आये । आते ही उन तपस्वियोंने दुर्जयसे कहा—'राजन् ! तुमने सम्पूर्ण लोकपालोंका अधिकार छीन लिया है । अब उनके बिना लोकयात्रा चलनी सम्भव नहीं दीखती है, अतएव तुम ऐसी व्यवस्था करो, जिससे इस संसारको उत्तम सुखकी प्राप्ति हो ।'

इस प्रकार तपस्वियोंके कहनेपर धर्मज्ञ राजा दुर्जयने उनसे कहा—'आप दोनों कौन हैं ?' उन शत्रुदमन तपस्वियोंने कहा—'हम दोनो असुर हैं । हमारे नाम विद्युत और सुविद्युत हैं । महाराज दुर्जय ! हम चाहते है कि अब तुम्हारे द्वारा सत्पुरुषोंके समाजमें सुसंस्कृत धर्म बना रहे; अतएव तुम हम दोनो-को लोकपालोंके स्थानपर नियुक्त कर दो । हम उनके सभी कार्य सम्पादन कर सकते है ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा दुर्जयने स्वर्गमें लोकपालोंके स्थानपर विद्युत और सुविद्युतकी तुरंत नियुक्ति कर दी । बस ! वे दोनों तपस्वी तत्काल वहीं अन्तर्धान हो गये ।

एक बार राजा दुर्जय मन्दराचल पर्वतपर गया। वहाँ उसने कुबेरके अत्यन्त मनोरम वनको देखा। वह वन इतना सुन्दर था, मानो दूसरा नन्दनवन ही हो। राजा दुर्जय प्रसन्नतापूर्वक उस रमणीय विपिनमें घूमने लगा। इतनेमें एक चम्पकवृक्षके नीचे उसे दो सुन्दरी कन्याएँ दीख पड़ीं। देखनेमें उनका रूप अत्यन्त सुन्दर एवं अद्भुत था। उन कन्याओंको देखकर राजा दुर्जयका मन बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। वह सोचने लगा—'ये सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याएँ कौन हैं ?' यों विचार करते हुए राजा दुर्जयको एक क्षण भी नहीं बीता होगा कि उसने देखा कि उस वनमें दो तपस्वी भी विराजमान हैं। उन्हें देखकर दुर्जयके मनमें अपार हर्ष उमड़ आया। उसने तुरंत हाथीसे उतरकर उन तपस्वियोंको प्रणाम किया। तपस्वियोंने राजा दुर्जयको बैठनेके लिये कुशाओंद्वारा निर्मित एक सुन्दर आसन दिया। राजा दुर्जय उसपर बैठ गया। उसके बैठ जानेपर तपस्वियोंने उससे पूछा—'तुम कौन हो, तुम्हारा कहाँसे आगमन हुआ है, किसके पुत्र हो और यहाँ किस लिये आये हो ?' इसपर राजा दुर्जयने हँसकर उन तपस्वियोंको अपना परिचय देते हुए कहा—'महानुभावो! सुप्रतीक नामसे प्रसिद्ध एक राजा हैं। मैं उनका पुत्र दुर्जय हूँ और भूमण्डलके सभी राजाओंको जीतनेकी इच्छासे यहाँ आया हुआ हूँ। कभी-कभी आप कृपा कर मुझे स्मरण अवश्य करें। तपोधनो! आप दोनों कौन हैं ? मुझपर कृपा कर यह बतला दें।'

दोनों तपस्वी बोले—"राजन्! हमलोग हेतृ और प्रहेतृ नामके स्वायम्भुव मनुके पुत्र हैं। हम देवताओंको जीतकर सर्वथा नष्ट कर देनेके विचारसे सुमेरु पर्वतपर गये थे। उस समय हमारे पास बड़ी विशाल सेना थी, जिसमें हाथी, घोड़े एवं रथ भरे हुए थे। देवता भी सैकड़ों एवं हजारोंकी संख्यामें थे। उनके पास महान् सेना भी थी; किंतु असुरोंके प्रहारसे उनके सभी सैनिक अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे। यह स्थिति देखकर देवता—क्षीरसागरमें, जहाँ भगवान् श्रीहरि शयन करते हैं—पहुँचे और उनकी शरणमें गये। वहाँ देवगण भगवान्‌को प्रणाम कर अपनी आप-बीती बातें यों सुनाने लगे—'भगवन्! आप हम सभी देवताओंके स्वामी हैं। पराक्रमी असुरोंने हमारी सारी सेनाको परास्त कर दिया है। भयके कारण हमारे नेत्र कातर हो रहे हैं। अतः आप हमारी रक्षा करनेकी कृपा करें। केशव! पहले भी आपने देवासुर संग्राममें क्रूरकर्मा कालनेमि एवं सहस्रभुजसे हमारी रक्षा की है। देवेश्वर! इस समय भी हमारे सामने वैसी ही परिस्थिति आ गयी है। हेतृ और प्रहेतृ नामके दो दानव देवताओंके लिये कण्टक बने हुए हैं। इनके सैनिकों तथा शस्त्रास्त्रोंकी संख्या असीम है। देवेश्वर! आपका सम्पूर्ण जगत्‌पर शासन है, अतः उन दोनों असुरोंको मारकर हम सभीकी रक्षा करनेकी कृपा करें।'

"इस प्रकार जब देवताओंने भगवान् नारायणसे प्रार्थना की, तब वे जगत्प्रभु श्रीहरि बोले—'उन असुरोंका संहार करनेके लिये मैं अवश्य आऊँगा।' भगवान् विष्णुके यह कहनेपर देवता मन-ही-मन भगवान् जनार्दनका स्मरण करते हुए सुमेरु पर्वतपर गये। वहाँ उनके चिन्तन करते ही सुदर्शनचक्र एवं गदा धारण किये हुए भगवान् नारायण हमलोगोंकी सेनाका भेदन करते हुए उसमें प्रविष्ट हो गये। उन सर्वलोकेश्वरने अपने योगैश्वर्यका आश्रय लेकर उसी क्षण अपने एकसे—दस, सौ, फिर हजार, लाख तथा करोड़ों रूप बना लिये। उन देवेश्वरके

आते ही सेनामें जो भी महान् पराक्रमी वीर हमारे बलके सहारे लड़ रहे थे, वे अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। राजन्! अधिक क्या उसी समय उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। इस प्रकार विश्वरूप धारण करनेवाले भगवान् नारायणने अपनी योगमायासे हमारी सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेनाका—जो हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल वीरों एवं ध्वजाओंसे भरी हुई थी, संहार कर डाला। बस, केवल हम दो दानवोंको बचे देखकर वे सुदर्शन-चक्रधारी श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिका ऐसा अद्भुत कर्म देखकर हम दोनोंने भी उन प्रभुकी आराधना करनेके लिये उनकी शरण ग्रहण कर ली। राजन्! राजा सुप्रतीक हमारे मित्र थे और तुम उनके पुत्र हो। ये दोनों कन्याएँ हमारी पुत्री हैं। मुझ हेतृकी कन्याका नाम सुकेशी और इस प्रहेतृकी कन्याका नाम मिश्रकेशी है। इन्हें तुम अपनी अर्द्धाङ्गिनीके रूपमें स्वीकार करो।'

हेतृके इस प्रकार कहनेपर राजा दुर्जयने उन दोनों मङ्गलमयी कन्याओंके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लिया। सहसा ऐसी दिव्य कन्याओंको प्राप्तकर दुर्जयके हर्षकी सीमा न रही। वह सैनिकोंके साथ अपनी राजधानीमें लौट आया। बहुत समयके बाद राजा दुर्जयके दो पुत्र हुए। सुकेशीसे जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम प्रभव पड़ा और मिश्रकेशीके पुत्रका नाम सुदर्शन रखा गया। राजा दुर्जय महान् वैभवशाली तो था ही, उसे परमश्रेष्ठ दो पुत्रोंकी प्राप्ति भी हो गयी। कुछ समयके पश्चात् वह राजा शिकार खेलनेके लिये जंगलमें गया। वहाँ जाकर उसने भयंकर जंगली जानवरोंको पकड़कर बाँधना शुरू कर दिया। इस प्रकार वनमें विचरण करते हुए राजा दुर्जयको जंगलमें कुटी बनाकर रहनेवाले एक पुण्यात्मा मुनि दिखायी पड़े। वे महाभाग मुनि तपस्या कर रहे थे। उनका नाम गौरमुख था। वे ऋषियोंके परिवारोंकी रक्षा तथा पापियोंके उद्धार-कार्यमें लगे रहते थे। उनके आश्रममें विशिष्ट गुणोंसे युक्त एक पवित्र सरोवर था। वहाँ एक ऐसा उत्तम वृक्ष भी था, जिसकी सुगन्धसे सारे वनका वायुमण्डल सुगन्धित हो उठता था। वे मुनि अपने आश्रममें स्थित होकर ऐसे जान पड़ते थे, मानो कोई देव उत्तम विमानपर आरूढ होकर आकाशसे पृथ्वी-पर उतर आया हो। मुनिवर गौरमुखके देदीप्यमान मुखसे छिटकता हुआ प्रकाश आकाशको जगमगा देता था। वे पवित्र वस्त्रोंसे सुशोभित थे। उनके शिष्योंकी मण्डली उच्चस्वरसे सामवेदका गान कर रही थी। उनके आश्रममें मुनि-कन्याएँ तथा मुनिपत्नियाँ भी अत्यन्त मृदुल वेष धारण किये हुए थीं। सुन्दर पुष्पोंसे लदे हुए अगणित वृक्ष उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। इस प्रकार उस आश्रममें मुनिवर गौरमुखकी यज्ञशाला अद्भुत शोभाको प्राप्त हो रही थी। (अध्याय १०)

राजा दुर्जयका चरित्र तथा नैमिषारण्यकी प्रसिद्धिका प्रसङ्ग

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! उस समय मुनिवर गौरमुखके परम उत्तम आश्रमको देखकर राजा दुर्जयने सोचा—'इस परम मनोहर आश्रममें चलूँ और इसमें रहनेवाले अनुपम ऋषियोंके दर्शन करूँ।' यों विचार करके राजा दुर्जय आश्रमके भीतर चले गये। मुनिवर गौरमुख धर्मके साक्षात् स्वरूप थे। आश्रममें राजा दुर्जयके आनेपर मुनिका हृदय आनन्दसे भर उठा। उन्होंने राजाका भलीभाँति सम्मान किया। स्वागत-सत्कारके पश्चात् परस्पर कुछ वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। मुनिवरने कहा—'महाराज!

मैं यथाशक्ति अनुयायियोंसहित आपको भोजन-पान कराऊँगा । आप हाथी, घोड़े आदि वाहनोंको मुक्त कर दें और यहाँ पधारें ।'

ऐसा कहकर मुनिवर गौरमुख मौन हो गये । मुनिके प्रति श्रद्धा होनेसे राजा दुर्जयके मनमें भी आतिथ्य स्वीकार करनेकी बात जँच गयी । अतः अनुचरोंके साथ वे वहीं रह गये । उनके पास पाँच अक्षौहिणी सेना थी । राजा दुर्जय सोचने लगे—'ये तपस्वी ऋषि मुझे यहाँ क्या भोजन देंगे ?' इधर राजाको भोजनके लिये निमन्त्रित करनेके पश्चात् विप्रवर गौरमुख भी बड़ी चिन्तामें पड़ गये । वे सोचने लगे—'मैं अब राजाको क्या खिलाऊँ ?' महर्षि गौरमुख निरन्तर भगवद्भावमें तल्लीन रहते थे । अतएव उनके मनमें चिन्ता उत्पन्न होनेपर उन्हें देवेश्वर जगत्प्रभु भगवान् नारायणकी याद आयी । मन-ही-मन उन्होंने भगवान् नारायणका स्मरण किया और गङ्गाके तटपर जाकर उन जगदीश्वर प्रभुकी स्तुति करने लगे ।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! विप्रवर गौरमुखने भगवान् विष्णुकी किस प्रकार स्तुति की, इसको सुननेके लिये मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ।

भगवान् वराह बोले—पृथ्वि ! गौरमुखने भगवान्की इस प्रकार प्रार्थना की—जो पीताम्बर धारण करते हैं, आदिरूप हैं तथा जलके रूपमें जो अभिव्यक्त होते हैं, उन सनातन भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है । जो घट-घट-वासी हैं, जलमें शयन करते हैं, पृथ्वी, तेज, वायु एवं आकाश आदि महाभूत जिनके स्वरूप हैं, उन भगवान् नारायणको मेरा बारंबार नमस्कार है । भगवन् ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके आराध्य और सबके हृदयमें स्थित हैं, अन्तर्यामी परमात्माके रूपमें विराजमान हैं । आप ही ॐकार तथा वषट्कार हैं । प्रभो ! आपकी सत्ता सर्वत्र विद्यमान है । आप समस्त देवताओंके आदिकारण हैं पर आपका आदि कोई नहीं है । भगवन् ! भूः, भुवः, स्वर्, जन, मह, तप और सत्य—ये सभी लोक आपमें स्थित हैं । अतः चराचर जगत् आपमें ही आश्रय पाता है । आपसे ही सम्पूर्ण प्राणि-समुदाय, चारों वेदों तथा सभी शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है । यज्ञ भी आपमें ही प्रतिष्ठित हैं । जनार्दन ! पेड़-पौधे, वनौषधियाँ, पशु-पक्षी और सर्प—इन सबकी उत्पत्ति आपसे ही हुई है । देवेश्वर ! यह दुर्जय नामका राजा मेरे यहाँ अतिथिरूपसे प्राप्त हुआ है । मैं इसका आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ । भगवन् ! आप देवताओंके भी आराध्य और जगत्के स्वामी हैं, मैं नितान्त निर्धन हूँ । फिर भी आपसे मेरी भक्ति और विनयपूर्ण प्रार्थना है कि आप मेरे यहाँ अन्न आदि भोज्य पदार्थोंका संचय कर दें । मैं अपने हाथसे जिस-जिस वस्तुका स्पर्श करूँ और आँखसे जिस-जिस पदार्थको देख लूँ, वह चाहे काठ अथवा तृण ही क्यों न हो, वह तत्काल चार प्रकारके सुपक्व अन्नके रूपमें परिणत हो जाय । परमेश्वर ! आपको मेरा नमस्कार है । भगवन् ! इसके अतिरिक्त यदि मैं किसी दूसरे पदार्थका भी मनमें चिन्तन करूँ तो वह सब-का-सब मेरे लिये सद्यः प्रस्तुत हो जाय ।*

---

* नमोऽस्तु विष्णवे नित्यं नमस्ते पीतवाससे । नमस्ते चाद्यरूपाय नमस्ते जलरूपिणे ॥
नमस्ते सर्वसस्थाय नमस्ते जलशायिने । नमस्ते क्षितिरूपाय नमस्ते तैजसात्मने ॥
नमस्ते वायुरूपाय नमस्ते व्योमरूपिणे । त्वं देवः सर्वभूतानां प्रभुस्त्वमसि हृच्छयः ॥
त्वमोंकारो वषट्कारः सर्वत्रैव च संस्थितः । त्वमादिः सर्वदेवानां तव चादिर्न विद्यते ॥
त्वं भूस्त्वं च भुवः स्वस्त्वं जनस्त्वं च महः स्मृतः । त्वं तपस्त्वं च सत्यं च त्वयि देव चराचरम् ॥
त्वत्तो भूतमिदं सर्वं विश्वं त्वत्तो ऋगादयः । त्वत्तः शास्त्राणि जातानि त्वत्तो यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! इस प्रकार जब मुनिवर गौरमुखने जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिकी स्तुति की तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन महाभाग केशवने अपना श्रेष्ठरूप गौरमुखको प्रत्यक्ष दिखलाया और कहा—'विप्रवर ! जो चाहो, वर माँग लो ।' यह सुनकर मुनिने ज्यों ही अपने नेत्र खोले, त्यों ही उनको भगवान् श्रीहरिके परम आश्चर्यमय रूपका दर्शन हुआ । उन्होंने देखा भगवान् जनार्दन अपने हाथोंमे गदा और शङ्ख लिये हुए हैं और उनका श्रीविग्रह पीताम्बरसे सुशोभित है। वे गरुडपर बैठे हुए हैं और तेजस्वी तो इतने हैं कि बारह सूर्योंका प्रकाश भी उनके सामने कुछ भी नहीं है। अधिक क्या, यदि आकाशमे एक हजार सूर्य एक साथ उदित हो जायँ तो कदाचित् उनका वह प्रकाश उन विश्वरूप परमात्माके प्रकाशके सदृश हो जाय ! अनेक रूपोमे विभक्त सम्पूर्ण जगत् उन श्रीहरिके श्रीविग्रहमें एकाकार रूपमे स्थित था। देवि ! भगवान् श्रीहरिके ऐसे अद्भुत रूपको देखते ही मुनिवर गौरमुखके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। मुनिने उनको सिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे—'भगवन् ! अब मुझे आपसे किसी प्रकारके वरकी इच्छा शेष नहीं रह गयी है। मै केवल यही चाहता हूँ कि इस समय राजा दुर्जयको जिस-किसी भी भाँति मेरे आश्रमपर अपने सैनिको एवं वाहनोके साथ भोजन प्राप्त हो जाय । कल तो वह अपने घर चला ही जायगा ।'

इस प्रकार मुनिवर गौरमुखके प्रार्थना करनेपर देवेश्वर श्रीहरि द्रवित हो गये और चिन्तन करनेमात्रसे सिद्धि-प्रदान करनेवाला एक महान् कान्तिमान् 'चिन्तामणि'रत्न उन्हे देकर वे अन्तर्धान हो गये। इधर गौरमुख भी अपने अनेक ऋषि-महर्षियोंसे सेवित पवित्र आश्रममें पधारे । वहाँ पहुँचकर मुनिने उस 'चिन्तामणि'के सम्मुख विशाल प्रासाद एवं हिमालयके शिखर तथा महान् मेघके समान ऊँचे एवं चन्द्र-किरणोंके सदृश चमकसे युक्त सैकड़ों तलोंके महलका चिन्तन किया। फिर तो एककी कौन कहे, हजारो एवं करोड़ोकी संख्यामे वैसे विशाल भवन तैयार हो गये। कारण, गौरमुखको भगवान् श्रीहरिसे वर मिल चुका था । महलोंके आस-पास चहारदीवारियाँ बन गयीं। उनके बगलमे सटे ही उपवन उन महलोंकी शोभा बढाने लगे। उन उद्यानोमें कोकिलें तथा अनेक प्रकारके पक्षी भी आ बसे । चम्पा, अशोक, जायफल और नागकेसर आदि अनेक प्रकारके बहुत-से वृक्ष उन उद्यानोमे सब ओर दृष्टिगत होने लगे। हाथियोंके लिये हथिसार तथा घोड़ोंके लिये घुड़सारका निर्माण हो गया। इन सबका संचय हो जानेपर गौरमुखने सब प्रकारके भोज्य पदार्थोंका चिन्तन किया। फिर उस मणिने भक्ष्य, भोज्य, लेह्य एवं चोष्य प्रभृति अनेक प्रकारके अन्न तथा परोसनेके लिये बहुत-से स्वर्ण-पात्र भी प्रस्तुत कर दिये। ऐसी सूचना मुनिवर गौरमुखको मिल गयी। तब उन्होंने परम तेजस्वी राजा दुर्जयसे कहा—'महाराज ! अब आप अपने सैनिकोके साथ महलोंमे पधारे ।' मुनिकी आज्ञा पाकर राजा दुर्जयने उस परम विशाल गृहमे प्रवेश किया, जो

त्वत्तो वृक्षा वीरुधश्च त्वत्तः सर्वा वनौषधिः । पशवः पक्षिणः सर्पास्त्वत्त एव जनार्दन ॥
ममापि देवदेवेश राजा दुर्जयसंज्ञितः । आगतोऽभ्यागतस्तस्य चातिथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥
तस्य मे निर्धनस्याद्य देवदेव जगत्पते । भक्तिनम्रस्य देवेश कुरुष्वान्नादिसंचयम् ॥
यं यं स्पृशामि हस्तेन यं च पश्यामि चक्षुषा । काष्ठं वा तृणकन्दं वा तत्तदन्नं चतुर्विधम् ॥
तथा त्वन्यतमं वापि यद्ध्यातं मनसा मया । तत्सर्वं सिद्ध्यतां मह्यं नमस्ते परमेश्वर ॥

(वराहपु० ११ । ११—२१)

पर्वतके समान ऊँचा जान पड़ता था। राजाके भीतर चले जानेपर अन्य सेवकगण भी यथाशीघ्र अपने-अपने गृहोंमें प्रविष्ट हो गये।

तदनन्तर जब सब-के-सब महलमें चले गये, तब फिर मुनिवर गौरमुखने उस दिव्य चिन्तामणिको हाथमें लेकर राजा दुर्जयसे कहा—'राजन्! यदि अब आप स्नान-भोजन करना चाहते हों तो मैं दास-दासियोंको आपकी सेवामें भेज दूँ।' इस प्रकार कहकर द्विजवर गौरमुखने राजाके देखते-देखते ही भगवान् विष्णुसे प्राप्त 'चिन्तामणि'को एकान्त स्थानमें स्थापित किया। शुद्ध एवं प्रभापूर्ण उस चिन्तामणिके वहाँ रखते-न-रखते हजारों दिव्य रूपवाली स्त्रियाँ प्रकट हो गयीं। उन स्त्रियोंके सभी अङ्ग बड़े सुन्दर, सुकुमार तथा अनुलेपनोंसे अलङ्कृत थे। उनके कपोल, केश और आँखें बड़ी सुन्दर थीं। वे सोनेके पात्रोंको लेकर चल पड़ीं। इसी प्रकार कार्य करनेमें कुशल अनेकों पुरुष भी एक साथ ही राजा दुर्जयकी सेवाके लिये अग्रसर हुए। अब तुरही आदि अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। जिस समय राजा दुर्जय स्नान करने लगे तो कुछ स्त्रियाँ इन्द्रके स्नानकाल समान ही उनके सामने भी नाचने और गाने लगीं। इस प्रकार दिव्य उपचारोंके साथ महाभाग दुर्जयका स्नानकार्य सम्पन्न हुआ।

अब राजा दुर्जय बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। वह सोचने लगा—'अहो! यह मुनिकी तपस्याका प्रभाव है अथवा इस चिन्तामणिका?' फिर उसने स्नान किया, उत्तम वस्त्र पहने और भाँति-भाँतिके अन्नोंसे बने भोजनको ग्रहण किया। उस समय मुनिवर गौरमुखने जिस प्रकार राजा दुर्जयकी सेवा एवं सत्कार किया, वैसे ही वे राजाके सेवकोंकी सेवामें भी संलग्न रहे। राजा अपने सेवकों, सैनिकों और वाहनोंके साथ भोजनपर बैठा ही था कि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलको पधारे। आकाश लाल हो गया। अब शरद् ऋतुके स्वच्छ चन्द्रमासे मण्डित रात्रि आयी। ऐसा जान पड़ता था, मानो सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न रोहिणीनाथ उस रात्रिसे अनुराग कर रहे हों। उनके साथ ही हरित किरणोंसे युक्त शुक्र और बृहस्पति भी उदित हो गये। पर चन्द्रमाके साथ उनकी शोभा अधिक नहीं हो रही थी। क्योंकि प्राणियोंकी ऐसी धारणा है कि दूसरेके पक्षमें गया हुआ कोई भी व्यक्ति अपने भिन्न स्वभावके कारण शोभा नहीं पाता। चन्द्रमाकी चमकती हुई किरणें सबको प्रसन्न करनेमें पूर्ण समर्थ हैं, किंतु उनमें भी सभी प्रेम नहीं करते।

अबतक उन नरेशके सभी सेवक एवं वे स्वयं भी भोजन-वस्त्र और आभूषणोंसे सत्कृत हो चुके थे। अब उनके सोनेके लिये बहुत-से रत्नजटित पलंग भी भिन्न-भिन्न कक्षोंमें उपस्थित हो गये। उनपर सुन्दर गद्दे और चादरें भी बिछी थीं। अपने हाव-भावसे प्रसन्न करनेवाली मनोहारिणी दिव्य स्त्रियाँ भी वहाँ सपर्याके लिये तत्पर थीं। राजा दुर्जय उस महलमें गया। साथ ही अपने भृत्योंको भी जानेकी आज्ञा दी। जब सभी महलोंमें चले गये, तब वह प्रतापी राजा भी स्त्रियोंसे घिरा सुख-पूर्वक शयन करनेवाले इन्द्रकी तरह सो गया।

इस प्रकार महात्मा गौरमुखके स्वागत-सत्कारसे प्रभावित, परम प्रसन्न राजा तथा उनके सभी सेवक सो गये। रात बीत जानेपर राजा दुर्जयने जगकर जब नेत्र खोले तो वे सुन्दर स्त्रियाँ, सभी बहुमूल्य महल तथा उत्तम-उत्तम पलंग सब-के-सब लुप्त हो गये थे। यह स्थिति देखकर दुर्जयको बड़ा आश्चर्य हुआ। मनमें चिन्ताके बादल उमड़ आये और दुःखकी लहरें उठने लगीं। यह मणि कैसे प्राप्त हो,

इस प्रकारकी चिन्ताकी लहरियाँ उसके मनमें बार-बार उठने लगी। अन्तमें उसने निश्चय किया कि इस गौरमुख ब्राह्मणकी यह मणि मैं हठपूर्वक छीन लूँ। फिर वहाँसे चलनेके लिये सबको आज्ञा दे दी। जब मुनिके आश्रमसे निकलकर वह थोड़ी दूर गया और उसके वाहन तथा सैनिक सभी बाहर चले आये, तब दुर्जयने विरोचन नामके अपने मन्त्रीको मुनिके पास भेजकर कहलवाया कि गौरमुखके पास जो मणि है, उसे वे मुझे दे दें। मन्त्रीने मुनिसे कहा—'रत्नोंके रखनेका उचित पात्र राजा ही होता है, इसलिये यह मणि आप राजा दुर्जयको दे दें।' मन्त्रीके ऐसा कहनेपर गौरमुखने क्रोधमें आकर उससे कहा—'मन्त्री! तुम उस दुराचारी राजा दुर्जयसे स्वयं मेरी बात कह दो। साथ ही मेरा यह भी संदेश कहना—'अरे दुष्ट! तू अभी यहाँसे भाग जा, क्योंकि यह स्थान दुर्जय-जैसे दुष्टोंके रहने योग्य नहीं है।'

इस प्रकार द्विजवर गौरमुखके कहनेपर दुर्जयका मन्त्री विरोचन, जो दूतका काम कर रहा था, राजाके पास गया और ब्राह्मणकी कही हुई सारी बातें उसे अक्षरशः सुना दीं। गौरमुखके वचन सुनते ही दुर्जयकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने उसी क्षण नील नामक मन्त्रीसे कहा—'तुम अभी जाओ और चाहे जैसे भी हो उस ब्राह्मणसे मणि छीनकर शीघ्र यहाँ आ जाओ।'

इसपर नील बहुत-से सैनिकोंको साथ लेकर गौरमुखके आश्रमकी ओर चल पड़ा। फिर वह रथसे नीचे उतरकर जमीनपर आया। तदनन्तर अग्निशालामें पहुँचकर उसने मणिको रखे हुए देखा। परम दारुण क्रूर बुद्धि नीलके पृथ्वीपर उतरते ही उस मणिसे भी अस्त्र-शस्त्र लिये हुए अपरिमित शक्तिशाली असंख्य शूर-वीर निकल पड़े, जो रथ, ध्वजा और घोड़ोंसे सुसज्जित थे तथा ढाल, तलवार, धनुष और तरकस लिये हुए थे।

(भगवान् वराह कहते हैं—) परम भाग्यवती पृथ्वि! उनमें पंद्रह तो प्रमुख वीर सेनापति थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—सुप्रभ, दीप्ततेज, सुरश्मि, शुभदर्शन, सुकान्ति, सुन्दर, सुन्द, प्रद्युम्न, सुमन, शुभ, सुशील, सुखद, शम्भु, सुदान्त और सोम। इन वीर पुरुषोंने विरोचनको बहुत-सी सेनाके साथ डटा देखा। तब ये सभी शूर-वीर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर बड़ी सावधानीसे युद्ध करने लगे। उनके धनुष सुवर्णके समान देदीप्यमान थे। उनके पास जो बाण थे, शुद्ध सोनेसे बने हुए थे। अब वे परम प्रसिद्ध तथा अत्यन्त भयंकर तलवारों एवं त्रिशूलोंसे प्रहार करने लगे। उस युद्धमें विरोचनके रथ, हाथी, घोड़े और पैदल लड़नेवाले सैनिकोंके आगे मणिसे प्रकट हुए वीरोंके रथ, हाथी, घोड़े एवं पदाति सैनिक डट गये और उनमें भयंकर द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया। छल-बल आदि अनेक प्रकारके युद्धोंके बावजूद विरोचनके सैनिक भयसे कम्पित हो उठे और वे भाग चले। घोर रक्तप्रवाहसे मार्ग बड़े भयंकर हो गये। दुर्जयके मन्त्री विरोचनकी तो जीवनलीला ही समाप्त हो गयी। उसके बहुत-से अनुयायी भी सैनिकोंसहित यमराजके लोकको प्रस्थान कर गये।

मन्त्री विरोचनके मर जानेपर अब स्वयं राजा दुर्जय चतुरङ्गिणी सेना लेकर युद्धक्षेत्रमें आया और मणिसे प्रकट हुए शूर-वीरोंके साथ उसका युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्धमें राजा दुर्जयकी सैन्यशक्तिका भयंकर विनाश हुआ। इधर हेति और प्रहेतिको जब खबर मिली कि मेरा जामाता दुर्जय संग्राममें लड़ रहा है तो वे दोनों असुर भी एक विशाल सेनाके साथ वहाँ आ गये। उस युद्धभूमिमें जो पंद्रह प्रमुख मायावी दैत्य आये थे, उनके नाम सुनो—प्रघस, विघस, सत्र, अशनिप्रभ, विद्युत्प्रभ, सुघोष, भयंकर उन्मत्ताक्ष, अग्निदत्त, अग्नितेज, बाहु, शक्र, प्रतर्दन, विरोध, भीमकर्मा और

विप्रचित्ति। इनके पास भी उत्तम अस्त्र-शस्त्रोंका संग्रह था। प्रत्येक वीरके साथ एक-एक अक्षौहिणी सेना थी। ये सभी दुष्ट दुर्जयकी ओरसे युद्धभूमिमें डटकर मणिसे प्रकट हुए वीरोंके साथ लड़नेके लिये उद्यत हो गये। सुप्रभने तीन बाणोंसे विप्रचित्तिको बींध डाला और सुरश्मिने दस बाणोंसे प्रघसको। उस मोर्चेपर सुदर्शनके पाँच बाणोंसे अशनिप्रभके अङ्ग छिद गये। इसी प्रकार सुकान्तिने विद्युत्प्रभको तथा सुन्दरने सुघोषको धराशायी कर डाला। सुन्दने अपने शीघ्रगामी पाँच बाणोंसे उन्मत्ताक्षपर प्रहार किया। साथ ही चमचमाते हुए बाणोंसे शत्रुके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इस प्रकार सुमनका अग्निदत्तसे, सुवेदका अग्नितेजसे, सुनलका बाहु एवं शक्रसे तथा सुवेदका प्रतर्दनसे युद्ध छिड़ गया।

यों अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी कुशलता दिखाते हुए सैनिक आपसमें युद्ध करने लगे पर अन्तमें मणिसे प्रकट हुए योद्धाओंके हाथ सभी दैत्य मार डाले गये। अब मुनिवर गौरमुख भी हाथमें कुश आदि लिये वनसे आश्रममें पहुँचे। दुर्जय अब भी बहुत-से सैनिकोंके साथ खड़ा था। यह देखकर गौरमुख आश्रमके दरवाजेपर रुक गये और मन-ही-मन विचार करने लगे—'अहो, इस मणिके कारण ही यह सब कुछ हुआ और हो रहा है। अरे! यह भयंकर संग्राम इस मणिके लिये ही आरम्भ हुआ है।'

इस प्रकार सोचते-सोचते मुनिवर गौरमुखने देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही पीताम्बर धारण किये हुए भगवान् नारायण गरुडपर विराजमान हो मुनिके सामने प्रकट हो गये और बोले—'कहो! मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ?' तब मुनिवर गौरमुखने हाथ जोड़कर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरिसे कहा—'प्रभो! आप इस पापी दुर्जयको इसकी सेनाके सहित मार डालें।' मुनिके ऐसा कहते ही अग्निके समान प्रज्वलित भगवान्के सुदर्शनचक्रने सेना-सहित दुर्जयको भस्म कर डाला। यह सब कार्य एक निमेषके भीतर—पलक मारते सम्पन्न हो गया। फिर भगवान्ने गौरमुखसे कहा—'मुने! इस वनमें दानवोंका परिवार एक निमेषमें ही नष्ट हो गया है। अतः इस स्थानकी 'नैमिषारण्य-क्षेत्रके' नामसे प्रसिद्धि होगी। इस तीर्थमें ब्राह्मणोंका समुचित निवास होगा। इस वनके भीतर मैं यज्ञपुरुषके रूपमें निवास करूँगा। ये पंद्रह दिव्य पुरुष, जो मणिसे प्रकट हुए हैं, सत्ययुगमें राज्य नामसे विख्यात राजा होंगे।'

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये और मुनिवर गौरमुख भी अपने आश्रममें आनन्द-पूर्वक निवास करने लगे।

(अध्याय ११)
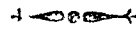
राजा सुप्रतीककृत भगवान्की स्तुति तथा श्रीविग्रहमें लीन होना

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! जब राजा सुप्रतीकने इतने बली पुरुषोंके चक्रकी आगमें भस्म होनेकी बात सुनी तो उनके सर्वाङ्गमें चिन्ता व्याप्त हो गयी और वे सोचमें पड़ गये। फिर सहसा उनके अन्तःकरणमें आध्यात्मिक ज्ञानका उदय हो गया। उन्होंने सोचा—'चित्रकूट **पर्वतपर** भगवान् विष्णु, राघवेन्द्र 'श्रीराम'नामसे कहे **हैं**, अत्यन्त वि है। अब मैं वहीं चलूँ और भगवान्के नामोंका उच्चारण करते हुए उनकी स्तुति करूँ।' मनमें ऐसा निश्चय कर राजा सुप्रतीक परम पवित्र चित्रकूट पर्वतपर पहुँचे और भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लग गये।

राजा सुप्रतीक बोले—जो राम नरनाथ, अच्युत, कवि, पुराण, देवताओंके शत्रु असुरोंका नाश करनेवाले,

प्रभव, महेश्वर, प्रपन्नार्तिहर एवं श्रीधर नामसे सुप्रसिद्ध हैं, उन मङ्गलमय भगवान् श्रीहरिको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ। प्रभो! पृथ्वीमे (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन) पाँच प्रकारसे, जलमे (शब्द, स्पर्श, रूप, रस—इन) चार प्रकारसे, अग्निमें (शब्द, स्पर्श और रूप—इन) तीन प्रकारसे, वायुमे (शब्द एवं स्पर्श—इन) दो प्रकारसे तथा आकाशमें केवल शब्दरूपसे विराजनेवाले परम पुरुष एकमात्र आप ही हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि तथा यह सारा संसार आपका ही रूप है—आपसे ही यह विश्व प्रकट होता तथा आपमे ही लीन हो जाता है—ऐसा शास्त्रोका कथन है। आपका आश्रय पाकर विश्व आनन्दका अनुभव करता है। इसीलिये तो समस्त संसारमे आपकी 'राम'नामसे प्रतिष्ठा हो रही है। भगवन्! यह संसार-समुद्र भयंकर दुःखरूपी तरङ्गोसे व्याप्त है। इस भयंकर समुद्रमें इन्द्रियाँ ही घड़ियाल और नाक आदि क्रूर जलजन्तु हैं। पर जिस मनुष्यने आपके नामस्मरणरूपी नौकाका आश्रय ले लिया है, वह इसमे नहीं डूबता। अतएव संतलोग तपोवनमें आपके राम-नामका स्मरण करते हैं। प्रभो! वेदोंके नष्ट होनेपर आपने मत्स्यावतार धारण किया। विभो! प्रलयके अवसरपर आप अत्यन्त प्रचण्ड अग्निका रूप धारण कर लेते है, जिससे सारी दिशाएँ भस्ममय रूपसे रञ्जित हो जाती हैं। माधव! समुद्र-मन्थनके समय युग-युगमें आप ही स्वयं कच्छपके रूपसे पधारे थे। भगवन्! आप जनार्दन नामसे विख्यात हैं। जब आपकी तुलना करनेवाला दूसरा कोई कहीं भी नहीं मिला तो आपसे अधिककी बात ही क्या है। महात्मन्! आपने यह सम्पूर्ण संसार, वेद एवं समस्त दिशाएँ ओत-प्रोत है। आप आदिपुरुष एवं परमधाम हैं। फिर आपके अतिरिक्त मैं दूसरे किसकी शरणमें जाऊँ। सर्वप्रथम केवल आप ही विराजमान थे। इसके बाद महत्तत्त्व, अहंतत्त्वमय जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन-बुद्धि एवं सभी गुण—इनका भी क्रमशः आविर्भाव हुआ। आपसे ही इन सबकी उत्पत्ति हुई है। मेरी समझसे आप सनातन पुरुष हैं। यह अखिल विश्व आपसे भलीभाँति विरचित एवं विस्तृत है। सम्पूर्ण संसारपर शासन करनेवाले प्रभो! विश्व आपकी मूर्ति है। आप हजार भुजाओसे शोभा पाते हैं। ऐसे देवताओंके भी आराध्य आप प्रभुकी जय हो। परम उदार भगवन्! आपके 'राम'रूपको मेरा नमस्कार है।

राजा सुप्रतीकके स्तुति करनेपर प्रभु प्रसन्न हो गये। भगवान्‌ने अपने स्वरूपका इस प्रकार उन्हें दर्शन कराया और कहा—'सुप्रतीक! वर माँगो।' श्रीहरिकी अमृतमयी वाणी सुनकर एक बार राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उन देवाधिदेव प्रभुको प्रणाम कर वे बोले—'भगवन्! आपका जो यह सर्वोत्तम विग्रह है, इसमें मुझे स्थान मिल जाय—आप मुझे यह वर देनेकी कृपा करें।' इस प्रकारकी बाते समाप्त होते ही महाराज सुप्रतीककी चित्तवृत्ति भगवान् गदाधरकी दिव्यमूर्तिमें लग गयी। ध्यानस्थ होकर वे भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करने लगे। फिर उसी क्षण अपने अनेक उत्तम कर्मोंके प्रभावसे वे पाञ्चभौतिक शरीर छोड़कर श्रीहरिके विग्रहमे लीन हो गये।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! तुम्हारे सामने मैंने इस समय जिसे प्रस्तुत किया है, वह यह वराहपुराण बहुत प्राचीन है। पूर्व सत्ययुगमें मैंने ब्रह्माजीको इसका उपदेश किया था। यह उसीका एक अंश है। कोई हजारों मुखोसे भी इसे कहना चाहे तो नहीं कह सकता। कल्याणि! प्रसङ्ग छिड़ जानेपर पूर्णरूपसे जो कुछ स्मरणमें आ गया है, वही प्राचीन चरित्र तुम्हें सुनाया है। कुछ लोग इसको समुद्रके बूँदोंसे उपमा देते हैं, पर यह ठीक नहीं है। स्वयम्भू ब्रह्माजी,

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र भगवान् नारायण तथा मैं—सभी समस्त चरित्रका वर्णन करनेमे असमर्थ हैं। अतः उन परम प्रभु परमात्माके आदिस्वरूपका तुम्हे सदा स्मरण करना चाहिये। समुद्रके रेतोंकी तथा पृथ्वीके रजःकणोकी तो गणना हो सकती है; किंतु परब्रह्म परमात्माकी कितनी लीलाएँ हैं—इसकी संख्या असम्भव है। शुचिस्मिते! तुम्हें मैंने जो प्रसङ्ग सुनाया है, यह उन भगवान् नारायणके केवल एक अंशसे सम्बन्ध रखता है। यह लीला सत्ययुगमें हुई थी। अव तुम दूसरा कौन प्रसङ्ग सुनना चाहती हो, यह वतलाओ।

(अध्याय १२)

पितरोंका परिचय, श्राद्धके समयका निरूपण तथा पितृगीत

पृथ्वीने पूछा—प्रभो! मुनिवर गौरमुखने भगवान् श्रीहरिके अद्भुत कर्मको देखकर फिर क्या किया?

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! भगवान् श्रीहरिने निमेषमात्रमे ही वह सब अद्भुत कर्म कर दिखाया था। उसे देखकर मुनिश्रेष्ठ गौरमुखने भी नैमिषारण्यक्षेत्रमें जाकर जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना आरम्भ कर दी। उस क्षेत्रमें प्रभास नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है। वह परम दुर्लभ तीर्थ चन्द्रमासे सम्बन्धित है। तीर्थके विशेषज्ञोंका कथन है कि वहाँके स्वामी भगवान् श्रीहरि दैत्योंका संहार करनेवाले 'दैत्यसूदन' नामसे सदा विराजते हैं। मुनिकी चित्तवृत्ति उन प्रभुकी आराधनामें स्थिर हो गयी। अभी वे उन भगवान् नारायणकी उपासना कर ही रहे थे—इतनेमें परम योगी मार्कण्डेयजी वहाँ आ गये। उन्हें अतिथिके रूपमें प्राप्तकर गौरमुखने दूरसे ही बड़े हर्षके साथ भक्तिपूर्वक उनकी पाद्य एवं अर्घ्य आदिसे पूजा आरम्भ कर दी। उन प्रतापी मुनिको कुशके आसनपर विराजित कर गौरमुखने सविनय पूछा—'महाव्रती मुनिश्रेष्ठ! मुझे पितरों एवं श्राद्धतत्त्वका उपदेश करें' गौरमुखके यो पूछनेपर महान् तपस्वी द्विजवर मार्कण्डेयजी बड़े मीठे स्वरमें उनसे कहने लगे।

मार्कण्डेयजी बोले—मुने! भगवान् नारायण समस्त देवताओंके आदि प्रवर्तक एवं गुरु हैं। उन्हींसे ब्रह्मा प्रकट हुए हैं और उन ब्रह्माजीने फिर सात मुनियोकी सृष्टि की है। मुनियोंकी रचना करके ब्रह्माजीने उनसे कहा—'तुम मेरी उपासना करो।' सुनते हैं उन लोगोंने स्वयं अपनी ही पूजा कर ली। अपने पुत्रोंद्वारा इस प्रकार कर्म-विकृति देखकर ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया—'तुमलोगोंने (ज्ञानाभिमानसे) मेरी जगह अपनी पूजा कर विपरीत आचरण किया है॥ अतः तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो जायगा।'

इस प्रकार शाप-ग्रस्त हो जानेपर उन सभी ब्रह्मपुत्रोंने अपने वंशके प्रवर्तक पुत्रोको उत्पन्न किया और फिर स्वयं स्वर्गलोक चले गये। उन ब्रह्मवादी मुनियोंके परलोकवासी होनेपर उनके पुत्रोने विधिपूर्वक श्राद्ध करके उन्हें तृप्त किया। उन पितरोंकी 'वैमानिक' संज्ञा है। वे सभी ब्रह्माजीके मनसे प्रकट हुए हैं। पुत्र मन्त्रका उच्चारण करके पिण्डदान करता है—यह देखते हुए वे वहाँ निवास करते हैं।

गौरमुखने पूछा—ब्रह्मन्! जितने पितर हैं और उनके श्राद्धका जो समय है, वह मै जानना चाहता हूँ. तथा उस लोकमें रहनेवाले पितरोके गण कितने हैं यह सब भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

मार्कण्डेयजी कहने लगे—द्विजवर! देवताओंके लिये सोम-रसकी वृद्धि करनेवाले कुछ स्वर्गनिवासी पितर मरीचि आदि नामोसे विख्यात हैं। उन श्रेष्ठ पितरोंमें चारको मूर्त (मूर्तिमान्) और तीनको अमूर्त (बिना मूर्तिका) कहा गया है। इस प्रकार उनकी संख्या सात

है। उनके रहनेवाले लोकको तथा उनके स्वभावको बताता हूँ, सुनो। सन्तानक नामक लोकोंमें 'भास्वर' नामक पितृगण निवास करते हैं, जो देवताओंके उपास्य हैं। ये सभी ब्रह्मवादी हैं। ब्रह्मलोकसे अलग होकर ये नित्य लोकोंमें निवास करते हैं। सौ युग व्यतीत हो जानेपर इनका पुनः प्रादुर्भाव होता है। उस समय अपनी पूर्वस्थितिका स्मरण होनेपर सर्वोत्तम योगका चिन्तन करके परम पवित्र योग-सम्बन्धी अनिवृत्ति-लक्षण मोक्षको वे प्राप्त कर लेंगे। ये सभी पितर श्राद्धमें योगियोंके योगद्वारा तृप्त किये जानेपर योगी पुरुषोंके हृदयोंमें पुनः योगकी वृद्धि करते हैं। क्योंकि भगवद्भक्तके भक्तियोगसे इन्हें बड़ा संतोष होता है। अतएव योगिवर! भगवान्‌को अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाले योगी पुरुषको श्राद्धकी वस्तुएँ देनी चाहिये।

सोम-रस पीनेवाले सोमप पितरोंका यह प्रधान प्रथम सर्ग है। ये पितर उत्तम वर्णवाले ब्राह्मण हैं। इन सबका एक-एक शरीर है। ये स्वर्गलोकमें रहते हैं। भूलोकके निवासी इनकी पूजा करते हैं। कल्प-पर्यन्तजीवी मरीचि आदि पितर ब्रह्माजीके पुत्र हैं। वे अपने परिवारोंके साथ मरुतोंकी उपासना करते हैं—मरुद्गण उनके उपास्य हैं। सनक आदि तपस्वी 'वैराज' नामक पितृगण उन मरुद्गणोंके भी पूज्य हैं। वैराजसंज्ञक पितरोंके गणकी संख्या सात कही जाती है। यह पितरोंकी संतानका परिचय हुआ।

भिन्न-भिन्न वर्णवाले सभी लोग उन पितरोंकी पूजा कर सकते हैं—यह नियम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—इन तीनों वर्णोंसे अनुमति पाकर द्विजेतर भी उक्त सभी पितरोंकी पूजा कर सकता है। उसके पितर इन पितृगणोंसे भिन्न हैं। ब्रह्मन्! पितरोंमें भी मुक्त और चेतनक—दो प्रकारके पितर नहीं देखे जाते हैं। विशिष्ट शास्त्रोंको देखने, पुराणोंका अवलोकन करने तथा ऋषियोंके बनाये हुए शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे अपने पूज्य पितरोंका परिचय प्राप्त कर लेना चाहिये।

सृष्टि रचनेके समय ही फिर ब्रह्माजीको स्मृति प्राप्त हुई। तब उन्हें पूर्व पुत्रोंका स्मरण हुआ। वे पुत्र तो ज्ञानके प्रभावसे परम पदको प्राप्त हो गये हैं—यह बात उन्हें विदित हो गयी। वसु आदिके कश्यप आदि, ब्राह्मणादि वर्णोंके वसु आदि और गन्धर्व-प्रभृति पितर हैं—यह बात साधारणरूपसे समझ लेनी चाहिये। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं है। मुनिवर! यह पितरोंकी सृष्टिका प्रसङ्ग है। प्रकरणवश तुम्हारे सामने इसका वर्णन कर दिया। वैसे यदि करोड़ वर्षोंतक इसे कहा जाय, तो भी इसके विस्तृत प्रसङ्गका अन्त नहीं दीखता।

द्विजवर! अब मैं श्राद्धके लिये उचित कालका विवेचन करता हूँ, सुनो। श्राद्धकर्ता जिस समय श्राद्धयोग्य पदार्थ या किसी विशिष्ट ब्राह्मणको घरमें आया जाने अथवा उत्तरायण या दक्षिणायनका आरम्भ, व्यतीपात योग हो, उस समय काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करे। विषुव योगमें*, सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणके समय, सूर्यके राश्यन्तर-प्रवेशमें, नक्षत्र अथवा ग्रहोंद्वारा पीड़ित होनेपर, बुरे स्वप्न दीखने तथा घरमें नवीन अन्न आनेपर काम्य-श्राद्ध करना चाहिये। जो अमावास्या अनुराधा, विशाखा एवं स्वाती नक्षत्रसे युक्त हो, उसमें श्राद्ध करनेसे पितृगण आठ वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। इसी प्रकार जो अमावास्या पुष्य, पुनर्वसु या आर्द्रा नक्षत्रसे युक्त हो, उसमें पूजित होनेसे पितृगण बारह वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। जो पुरुष देवताओं एवं पितृगणको तृप्त करना चाहते हैं, उनके लिये धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद अथवा शतभिषासे युक्त अमावास्या अत्यन्त दुर्लभ है। ब्राह्मणश्रेष्ठ! जब अमावास्या इन उपर्युक्त नौ नक्षत्रोंसे युक्त होती है, उस समय किया हुआ श्राद्ध पितृगणको अक्षय तृप्तिकारक होता है। वैशाखमासके शुक्ल पक्षकी तृतीया,

* वर्षके जिस अहोरात्रमें सूर्यके विषुवरेखापर चले जानेपर दिन-रातका मान बराबर हो जाता है, उस समय विषुव योगकी प्राप्ति या संक्रान्ति होती है।

कार्तिकके शुक्ल पक्षकी नवमी, भाद्रपदके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी, माघमासकी अमावास्या, चन्द्रमा अथवा सूर्यके ग्रहणके समय तथा चारों अष्टकाओंमें* अथवा उत्तरायण या दक्षिणायनके आरम्भके समय जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे पितरोंको तिलमिश्रित जल भी दान कर देता है, वह मानो सहस्र वर्षोंके लिये श्राद्ध कर देता है। यह परम रहस्य स्वयं पितृगणोंका बतलाया हुआ है। कदाचित् माघकी अमावास्याका यदि शतभिषा नक्षत्रसे योग हो जाय तो पितृगणकी तृप्तिके लिये यह परम उत्कृष्ट काल होता है। द्विजवर! अल्प पुण्यवान् पुरुषोंको ऐसा समय नहीं मिलता और यदि उस दिन धनिष्ठा नक्षत्रका योग हो जाय तो उस समय अपने कुलमें उत्पन्न पुरुषद्वारा दिये हुए अन्न एवं जलसे पितृगण दस हजार वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं तथा यदि माघी अमावास्याके साथ पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रका योग हो और उस अवसरपर पितरोंके लिये श्राद्ध किया जाय तो इस कर्मसे पितृगण अत्यन्त तृप्त होकर पूरे युगतक सुखपूर्वक शयन करते हैं। गङ्गा, शतद्रु, विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्यमें स्थित गोमती नदीमें स्नानकर पितरोंका आदरपूर्वक तर्पण करनेसे मनुष्य अपने समस्त पापोंको नष्ट कर देता है। पितृगण सर्वदा यह गान करते हैं कि वर्षाकालमें (भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशीके) मघा-नक्षत्रमें तृप्त होकर फिर माघकी अमावास्याको अपने पुत्र-पौत्रादिद्वारा दी गयी पुण्यतीर्थोंकी जलाञ्जलिसे हम कब तृप्त होंगे। विशुद्ध चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, उपर्युक्त विधि, योग्य पात्र और परम भक्ति—ये सब मनुष्यको मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं।

पितृगीत

विप्रवर! इस प्रसङ्गमे पितरोंद्वारा गाये हुए कुछ श्लोकोंका श्रवण करो। उन्हें सुनकर तुमको आदरपूर्वक वैसा ही आचरण करना चाहिये। पितृगण कहते हैं—

कुलमें क्या कोई ऐसा बुद्धिमान् धन्य मनुष्य जन्म लेगा जो वित्तलोलुपताको छोड़कर हमारे निमित्त पिण्ड-दान करेगा। सम्पत्ति होनेपर जो हमारे उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको रत्न, वस्त्र, यान एवं सम्पूर्ण भोग-सामग्रियोंका दान करेगा अथवा केवल अन्न-वस्त्रमात्र वैभव होनेपर श्राद्धकालमें भक्तिविनम्र चित्तसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन ही करायेगा या अन्न देनेमें भी असमर्थ होनेपर ब्राह्मणश्रेष्ठोंको वन्य फल-मूल, जंगली शाक और थोड़ी-सी दक्षिणा ही देगा, यदि इसमें भी असमर्थ रहा तो किसी भी द्विजश्रेष्ठको प्रणाम करके एक मुट्ठी काला तिल ही देगा अथवा हमारे उद्देश्यसे पृथ्वीपर भक्ति एवं नम्रतापूर्वक सात-आठ तिलोंसे युक्त जलाञ्जलि ही देगा, यदि इसका भी अभाव होगा तो कहीं-न-कहींसे एक दिनका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक हमारे उद्देश्यसे गौको खिलायेगा तथा इन सभी वस्तुओंका अभाव होनेपर वनमें जाकर अपने कक्षमूल (बगल) को दिखाता हुआ सूर्य आदि दिक्पालोंसे उच्चस्वरसे यह कहेगा—

> न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
> च्छ्राद्धस्य योग्यं स्वपितॄन्नतोऽस्मि।
> तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
> भुजौ ततौ वर्त्मनि मारुतस्य॥
> (१३।५८)

'मेरे पास श्राद्धकर्मके योग्य न धन-सम्पत्ति है और न कोई अन्य सामग्री, अतः मैं अपने पितरोंको प्रणाम करता हूँ। वे मेरी भक्तिसे ही तृप्ति-लाभ करें। मैने अपनी दोनों बाँहें आकाशमे उठा रखी हैं।'

द्विजोत्तम! धनके होने अथवा न होनेकी अवस्थामें पितरोंने इस प्रकारकी विधियाँ बतलायी हैं। जो पुरुष इसके अनुसार आचरण करता है, उसके द्वारा श्राद्ध समुचितरूपसे ही सम्पन्न माना जाता है।

(अध्याय १३)

---

* प्रत्येक मासकी सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी तिथियोंके समूहकी तथा पौष-माघ एवं फाल्गुनके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथियोंकी 'अष्टका' संज्ञा है।

श्राद्ध-कल्प

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विप्रवर ! प्राचीन समयमें यह प्रसङ्ग ब्रह्माजीके पुत्र सनन्दनने, जो सनकजीके छोटे भाई एवं परम बुद्धिमान् हैं, मुझसे कहा था। अब ब्रह्माजीद्वारा बतलायी वह बात सुनो। त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, छहों वेदाङ्गोंके जाननेवाले, यज्ञानुष्ठानमें तत्पर, भानजे, दौहित्र, श्वशुर, जामाता, मामा, तपस्वी ब्राह्मण, पञ्चाग्नि तपनेवाले, शिष्य, सम्बन्धी तथा अपने माता एवं पिताके प्रेमी—इन ब्राह्मणोंको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करना चाहिये। मित्रघाती, स्वभावसे ही विकृत नखवाला, काले दाँतवाला, कन्यागामी, आग लगानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, जनसमाजमें निन्दित, चोर, चुगलखोर, ग्रामपुरोहित, वेतन लेकर पढ़ने तथा पढ़ानेवाला, पुनर्विवाहिता स्त्रीका पति, माता-पिताका परित्याग करनेवाला, हीन वर्णकी संतानका पालन-पोषण करनेवाला, शूद्रा स्त्रीका पति तथा मन्दिरमें पूजा करके जीविका चलानेवाला—ऐसे ब्राह्मण श्राद्धके अवसरपर निमन्त्रण देने योग्य नहीं हैं।

ब्राह्मणको निमन्त्रित करनेकी विधि

विचारशील पुरुषको चाहिये कि एक दिन पूर्व ही संयमी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे दे। पर श्राद्धके दिन कोई अनिमन्त्रित तपस्वी ब्राह्मण घरपर पधारें तो उन्हें भी भोजन कराना चाहिये। श्राद्धकर्ता घरपर आये हुए ब्राह्मणोंका चरण धोये, फिर अपना हाथ धोकर उन्हें आचमन कराये। तत्पश्चात् उन्हें आसनों-पर बैठाये एवं भोजन कराये।

ब्राह्मणोंकी संख्या आदि

पितरोंके निमित्त अयुग्म अर्थात् एक, तीन इत्यादि तथा देवताओंके निमित्त युग्म अर्थात् दो, चार—इस क्रमसे ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्था करे। अथवा देवताओं एवं पितरों—दोनोंके निमित्त एक-एक ब्राह्मणको भोजन करानेका भी विधान है। नानाका श्राद्ध वैश्वदेवके साथ होना चाहिये। पितृपक्ष और मातामहपक्ष—दोनोंके लिये एक ही वैश्वदेव-श्राद्ध करे। देवताओंके निमित्त ब्राह्मणोंको पूर्वमुख बैठाकर भोजन कराना चाहिये तथा पितृपक्ष एवं मातामहपक्षके ब्राह्मणोंको उत्तरमुख बिठाकर भोजन कराये। द्विजवर ! कुछ आचार्य कहते हैं, पितृपक्ष और मातामह—इन दोनोंके श्राद्ध अलग-अलग होने चाहिये। अन्य कुछ महर्षियोंका कथन है—दोनोंका श्राद्ध एक साथ एक ही पाकमें होना भी समुचित है।

श्राद्धका प्रकार

बुद्धिमान् पुरुष श्राद्धमें आसनके लिये सर्वप्रथम कुशा दे। फिर देवताओंका आवाहन करे। तदनन्तर अर्घ्य आदिसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे जल एवं यवसे देवताओंको अर्घ्य देना चाहिये। फिर श्राद्धविधिको जाननेवाला श्राद्धकर्ता विधिपूर्वक उत्तम चन्दन, धूप और दीप उन विश्वेदेव आदि देवताओंको अर्पण करे। पितरोंके निमित्त इन सभी उपचारोंका अपसव्य-भावसे निवेदन करे। फिर ब्राह्मणकी अनुमतिसे दो भाग किये हुए कुश पितरोंके लिये दे। विवेकी पुरुषको चाहिये, मन्त्रका उच्चारण करके पितरोंका आवाहन करे। अपसव्य होकर तिल और जलसे अर्घ्य देना उचित है।

---

१. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको पढ़नेवाला या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

२. 'मधुवाताः' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधु-व्रतका आचरण करनेवाला।

३. 'ब्रह्म मेतु मां' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला

४. यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर रखना।

श्राद्ध करते समय अतिथिके आ जानेपर कर्तव्यका विधान

मार्कण्डेयजी कहते हैं—द्विजवर ! श्राद्ध करते समय यदि कोई भोजन करनेकी इच्छासे भूखा पथिक अतिथि-रूपमें आ जाय तो ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर उसे भी यथेच्छ भोजन कराना चाहिये। अनेक अज्ञातस्वरूप योगिगण मनुष्योंका उपकार करनेके लिये नाना रूप धारणकर इस धराधामपर विचरण करते रहते हैं। इसलिये विज्ञ पुरुष श्राद्धके समय आये हुए अतिथिका सत्कार अवश्य करे। विप्रवर ! यदि उस समय वह अतिथि सम्मानित नहीं हुआ तो श्राद्ध करनेसे प्राप्त होनेवाले फलको नष्ट कर देता है।

श्राद्धके समय हवन करनेकी विधि

(मार्कण्डेयजी कहते हैं)—पुरुषप्रवर ! श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणको भोजन करानेके पहले उनसे आज्ञा पाकर शाक और लवणहीन अन्नसे अग्निमें तीन बार हवन करना चाहिये। उनमें **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा'** इस मन्त्रसे पहली आहुति, **'सोमाय पितृमते स्वाहा'**—इससे दूसरी एवं **'वैवस्वताय स्वाहा'** कहकर तीसरी आहुति देनेका समुचित विधान है। तत्पश्चात् हवन करनेसे बचे हुए अन्नको थोड़ा-थोड़ा सभी ब्राह्मणोंके पात्रोंमें दे।

श्राद्धमें भोजन करानेका नियम

भोजनके लिये उपस्थित अन्न अत्यन्त मधुर, भोजन-कर्ताकी इच्छाके अनुसार तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ हो। पात्रोंमें भोजन रखकर श्राद्धकर्ता अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर वचन कहे—'महानुभावो ! अब आप लोग अपनी इच्छाके अनुसार भोजन करें।' ब्राह्मणोंको भी तद्गतचित्त और मौन होकर प्रसन्नमुखसे सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये। यजमानको क्रोध तथा उतावले-पनको छोड़कर भक्तिपूर्वक भोजन परोसते रहना चाहिये।

अभिश्रवण (वैदिक श्राद्धमन्त्रका पाठ)

श्राद्धमें ब्राह्मणोंके भोजन करते समय रक्षोघ्न मन्त्र*का पाठ करके भूमिपर तिल बिखेर दे तथा अपने पितृरूपमें उन द्विजश्रेष्ठोंका ही चिन्तन करे। साथ ही यह भी भावना करे—'इन ब्राह्मणोंके शरीरोंमें स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज भोजन-से तृप्त हो जायँ।' भूमिपर पिण्ड देते समय प्रार्थना करे—'मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह इस पिण्डदानसे तृप्ति-लाभ करें। होमद्वारा सबल होकर मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आज तृप्ति-लाभ करें।' सबके बाद फिर प्रार्थना करनी चाहिये—'मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह—ये महानुभाव मैंने भक्तिपूर्वक उनके लिये जो कुछ किया या कहा है—उससे तृप्त होनेकी कृपा करें। मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह और विश्वेदेव तृप्त हो जायँ एवं समस्त राक्षसगण नष्ट हों। यहाँ सम्पूर्ण हव्य-फलके भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं। अतः उनकी संनिधिके कारण समस्त राक्षस और असुरगण यहाँसे तुरंत भाग जायँ।'

अन्न आदिके विकरणका नियम

जब निमन्त्रित ब्राह्मण भोजनसे तृप्त हो जायँ, तो भूमिपर थोड़ा-सा अन्न डाल देना चाहिये। आचमनके लिये उन्हें एक-एक बार शुद्ध जल देना आवश्यक है। तदनन्तर भलीभाँति तृप्त हुए ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर भूमिपर सभी उपस्थित अन्नोंसे पिण्डदान करनेका विधान है।

पिण्डदानका नियम

श्राद्धकालमें भलीभाँति सावधान होकर तिलके साथ उन्हें पिण्ड अर्पण करे। पितृतीर्थसे तिलयुक्त जलाञ्जलि दे तथा मातामह आदिके लिये भी पितृतीर्थसे ही पिण्ड-दान करना चाहिये। फिर ब्राह्मणोंके उच्छिष्टके निकट

---

* रक्षोघ्न-मन्त्र—

यज्ञेश्वरो यज्ञसमस्तनेता भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्संनिधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥ (वराहपुराण १४ । ३२)

ही दक्षिण दिशामें अग्रभाग करके बिछाये हुए कुशाओं-पर पहले अपने पिताके लिये पुष्प और धूप आदिसे पूजित पिण्ड दान करे। फिर पितामह और प्रपितामहके लिये एक-एक पिण्ड अर्पण करना चाहिये। तदनन्तर **'लेपभागभुजस्तृप्यन्ताम्'**—ऐसा उच्चारण करते हुए लेपभोजी (पिण्डसे बचे अन्न पानेवाले) पितरोंके निमित्त कुशाके मूलसे अपने हाथमें लगे अन्नको गिरावे। विवेकी पुरुषको चाहिये कि इसी प्रकार गन्ध और मालादियुक्त पिण्डोंसे मातामह आदिका पूजन करके फिर द्विजश्रेष्ठोंको आचमन करावे। द्विजवर! पितरोंका चिन्तन करते हुए भक्तिके साथ पहले पिता प्रभृतिको पिण्ड देना आवश्यक है। फिर स्वस्ति-वाचन करनेवाले ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देनेके पश्चात् विश्वेदेवके निमित्त प्रार्थनाके मन्त्रोंका पाठ होना चाहिये। जो विश्वेदेव यहाँ पधारे हैं, वे प्रसन्न हो जायँ—यों श्राद्धकर्ता प्रार्थना करे। वहाँ उपस्थित ब्राह्मण उसका अनुमोदन कर दें। फिर आशीर्वादके लिये प्रार्थना करना समुचित है। महामते! पहले पितृपक्षके ब्राह्मणोंका विसर्जन करे। तत्पश्चात् देवपक्षके ब्राह्मण विदा किये जायँ। विश्वेदेवगणके सहित मातामह आदिमें भी ब्राह्मण-भोजन, दान और विसर्जन आदिकी यही विधि बतलायी गयी है। पितृ और मातामह—दोनों ही पक्षोंके श्राद्धोंमें पाद-शौच आदि सभी कर्म पहले देवपक्षके ब्राह्मणोंका करे। परंतु विदा पहले पितृपक्षीय अथवा मातृपक्षीय ब्राह्मणोंको ही करें। मातामह आदि तीन पितरोंके श्राद्धमें ज्ञानी ब्राह्मण प्रथम स्थान पानेका अधिकारी है। ब्राह्मणोंको प्रीतिवचन और सम्मानपूर्वक विदा करे। उनके जानेके समय द्वारतक पीछे-पीछे जाय। जब वे आज्ञा दें, तब लौट आवे।

श्राद्धके अन्तमें बलिवैश्वदेवका विधान

श्राद्ध करनेके पश्चात् वैश्वदेव नामक नित्यक्रिया करनी चाहिये। इस प्रकार सबका सत्कार करके अपने घरके बड़े लोगों तथा बन्धु-बान्धवों एवं सेवकोंसहित स्वयं भोजन करना चाहिये। विवेकी पुरुषका कर्तव्य है कि इसी प्रकार पिता, पितामह, प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह एवं वृद्धप्रमातामहका श्राद्ध सम्पन्न करे। श्राद्धद्वारा अत्यन्त तृप्त होकर ये पितर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। काला तिल, कुतप मुहूर्त* और दौहित्र—ये तीन श्राद्धमें परम पवित्र माने जाते हैं। चाँदीका दान तथा उसका दर्शन भी श्रेष्ठ है। श्राद्ध-कर्ताके लिये क्रोध करना, उतावलापना तथा उस दिन कहीं जाना मना है। ये तीनों बातें श्राद्धमें भोजन करनेवालेके लिये भी वर्ज्य हैं। द्विजवर! विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह एवं कुटुम्बीजन सभी संतुष्ट रहते हैं। द्विजवर! पितृ-गणोंका आधार चन्द्रमा है और चन्द्रमाका आधार योग है। अतः श्राद्धमें योगिजनको नियुक्त करना अति उत्तम है। विप्रवर! श्राद्धभोजी एक सहस्र ब्राह्मणोंके सम्मुख यदि एक भी योगी उपस्थित हो जाय तो वह यजमानके सहित उन सबका उद्धार कर देता है। सामान्यरूपसे सभी पुराणोंमें इस पितृक्रियाका वर्णन किया गया है। इस क्रमसे कर्मकाण्ड होना चाहिये।

यह जानकर भी मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाता है। गौरमुख! श्रेष्ठ व्रतवाले बहुत-से ऋषि श्राद्धका आश्रय लेकर मुक्त हो चुके हैं। अतएव तुम भी इसके अनुष्ठानमें यथाशीघ्र तत्पर हो जाओ।

द्विजवर! तुमने भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको पूछा है, अतः तुम्हारे सामने मैं इसका वर्णन कर चुका। जो पितृयज्ञ करके भगवान् श्रीहरिका ध्यान करता है, उससे बढ़कर कोई कार्य नहीं है और उस यज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई पितृतन्त्र भी नहीं है—इसमें कोई संदेह नहीं।

(अध्याय १४)

---

* दिनके ८वें मुहूर्तको 'कुतप' कहते हैं, यह प्रायः साढ़े बारह बजेके आसपास आता है।

गौरमुखके द्वारा दस अवतारोंका स्तवन तथा उनका ब्रह्ममें लीन होना

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! मुनिवर गौरमुखने मार्कण्डेयजीके मुखसे श्राद्धसम्बन्धी ऐसी विधि सुनकर फिर क्या किया ?

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे ! मार्कण्डेयजीकी बुद्धि अपरिमित थी। उनके द्वारा इस प्रकार पितृकल्प सुनते ही मुनिवरकी कृपासे गौरमुखको सौ जन्मोंकी बातें याद आ गयीं।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! गौरमुख पूर्वजन्ममें कौन थे, उनका क्या नाम था, बातें याद आनेकी शक्ति उनमें कैसे आयी और उन महाभागने उन्हें जानकर फिर क्या किया ?

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! ये गौरमुख पूर्वके एक दूसरे कल्पमें स्वयं भृगु मुनि थे। श्रीब्रह्माजीने अपने पुत्रोंको जो यह शाप दिया था कि पुत्रोंद्वारा ही उपदेश प्राप्त करके तुमलोग सद्गति प्राप्त करोगे। इसीलिये श्रीमार्कण्डेयजीने भी इन्हें ज्ञान प्रदान किया। मुनिवर मार्कण्डेयजी भी उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए थे। श्रेष्ठ अङ्गोंसे शोभा पानेवाली पृथ्वी ! इस प्रकार उपदिष्ट होनेपर उन्हें सम्पूर्ण जन्मोंकी बातें याद हो आयीं। फिर पूर्वजन्मकी बातको स्मरण करके उन्होंने जो कुछ किया है, वह संक्षेपमें कहता हूँ, सुनो। उस समय गौरमुख पूर्व-कथनानुसार पितरोंके लिये बारह वर्षोंतक श्राद्ध करते रहे। तत्पश्चात् श्रीहरिकी आराधनाके लिये वे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध जो प्रभासतीर्थ है, वहीं जाकर गौरमुखने दैत्य-दलन परमप्रभुकी स्तुति आरम्भ कर दी।

दशावतारस्तोत्र

गौरमुख बोले—जो शत्रुओंका दर्प दूर करनेवाले, ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, सूर्य, चन्द्रमा, अश्विनीकुमाररूपमें प्रतिष्ठित, युगमें स्थित, परमपुराण, आदिपुरुष, सदा विराजमान तथा देवाधिदेव भगवान् नारायण नामसे विख्यात हैं, उन मङ्गलमय श्रीहरिकी अब मैं स्तुति करता हूँ। प्राचीन समयमें जब वेद नष्ट हो चुके थे, उस अवसरपर इस विशाल वसुंधराका भरण-पोषण करनेवाले जिन आदिपुरुषने पर्वतके समान विशाल मत्स्यका शरीर धारण किया था तथा जिनके पुच्छके अग्रभागसे चमचमाती हुई तेज-छटा विकीर्ण हो रही थी, उन शत्रुसूदन भगवान् श्रीहरिकी मैं स्तुति करता हूँ। समुद्र-मन्थनके निमित्त सबका हित करनेके विचारसे कच्छपका रूप धारणकर जिन्होंने महान् पर्वत मन्दराचलको आश्रय दिया था वे दैत्योंके संहार करनेवाले पुराण-पुरुष देवेश्वर भगवान् श्रीहरि मेरी सभी प्रकार रक्षा करें। जिन महापुरुषने महावराहका रूप धारणकर रसातलमें प्रवेश किया और वहाँसे पृथ्वीको ले आये तथा देवताओं एवं सिद्धोंने जिनकी 'यज्ञपुरुष' संज्ञा दी है, वे असुरसंहर्ता, सनातन श्रीहरि मेरी रक्षा करें। जो प्रत्येक युगमें भयंकर नृसिंहरूपसे विराजते हैं, जिनका मुख अत्यन्त भयावह है, कान्ति सुवर्णके समान है तथा जिनका दैत्योंका दलन करना स्वाभाविक गुण है, वे योगिराज जगत्के परम आश्रय भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा करें। जिनका कोई माप नहीं है, फिर भी बलिका यज्ञ नष्ट करनेके लिये जिन योगात्माने योगके बलसे दण्ड और मृगचर्मसे सुशोभित वामन-रूपसे बढ़ते हुए त्रिलोकीतक नाप ली, वे परम प्रभु हमारी रक्षा करें। जिन्होंने परमपराक्रमी परशुरामजीका रूप धारण करके इक्कीस बार सम्पूर्ण भूमण्डलपर विजय प्राप्त की और उसे कश्यपजीको सौंप दिया तथा जो सज्जनोंके रक्षक एवं असुरोंके संहारक हैं, वे हिरण्यगर्भ भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा

करें। हिरण्यगर्भ जिनकी संज्ञा है, सर्वसाधारण-जन जिन्हें देख नहीं सकता तथा जो राम आदि रूपोंसे चार प्रकारके शरीर धारण कर चुके हैं एवं अनेक प्रकारके रूपोंसे राक्षसोंका विनाश करते हैं, वे आदि-पुरुष भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा करें। चाणूर और कंस नामधारी दानव दर्पसे भर गये थे। उनके भयसे देवताओंके हृदयमें आतङ्क छा गया था। अतः उन्हें निर्भय करनेके लिये जो प्रत्येक युग एवं कल्पमें वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्णरूपसे विराजते हैं, वे प्रभु हमारी रक्षा करें। जो सनातन, ब्रह्ममय एवं महान् पुरुष होकर भी वर्णकी व्यवस्था करनेके लिये प्रत्येक युगमें कल्किके नामसे विख्यात हैं, देवता, सिद्ध और दैत्योंकी आँखें जिनके रूपको देख नहीं सकतीं एवं जो विज्ञान-मार्गका त्याग करके यम-नियम आदिके प्रवर्तक बुद्धरूपसे सुपूजित होते हैं और मत्स्य आदि अनेक रूपोंमें विचरते हैं, वे भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा करें। भगवन्! आप पुरुषोत्तम हैं तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। आपको मेरा अनेकशः प्रणाम है। प्रभो! अब आप मुझे मुक्ति-पद प्रदान करनेकी कृपा कीजिये।*

इस प्रकार महर्षि गौरमुखके द्वारा भक्तिभावसे संस्तुत एवं नमस्कृत होते-होते चक्र एवं गदाधारी स्वयं श्रीहरि उनके सामने प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हो गये। उस समय गौरमुखने देखा कि प्रभुके विग्रहसे दिव्य विज्ञान भी प्रकट हो रहा है। उसे पाकर मुनिकी अन्तरात्मा पूर्ण शान्त हो गयी। गौरमुखके शरीरसे विज्ञानात्मा निकली और श्रीहरिको पाकर उनके मुक्ति-संज्ञक सनातन श्रीविग्रहमें सदाके लिये शान्त हो गयी।

(अध्याय १५)

महातपाका उपाख्यान

पृथ्वीने पूछा—भगवन्! मणिसे जो प्रधान पुरुष निकले थे तथा जिन्हें भगवान् श्रीहरिने वर दिया था—'तुम सभी त्रेतायुगमें राजा बनोगे', उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? उनके नाम क्या हुए तथा उन्होंने कौन-कौनसे काम किये? आप मुझे यह प्रसङ्ग बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—प्राणियोंको प्रश्रय देने-

---

* स्तोष्ये महेन्द्रं रिपुदर्पहं शिवं नारायणं ब्रह्मविदां वरिष्ठम्। आदित्यचन्द्राश्वियुगस्थमाद्यं पुरातनं दैत्यहरं सदा हरिम्॥
चकार मात्स्यं वपुरात्मनो यः पुरातनं वेदविनाशकाले। महामहीभृद्बृहत्पुच्छच्छटाहतवार्च्चिः सुरशत्रुहाद्यः॥
तथाब्धिमन्थानकृते गिरीन्द्रं दधार यः कौर्मवपुः पुराणम्। हितेच्छयातः पुरुषः पुराणः प्रपातु मां दैत्यहरः सुरेशः॥
महावराहः सततं पृथिव्यास्तलात्तलं प्राविशद् यो महात्मा। यज्ञाङ्गसंज्ञः सुरसिद्धसङ्घैः स पातु मां दैत्यहरः पुराणः॥
नृसिंहरूपी च बभूव योऽसौ युगे युगे योगिवरोऽथ भीमः। करालवक्त्रः कनकाग्रवर्चा वराशयोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥
बलेर्मखध्वंसकृदप्रमेयो योगात्मको योगवपुःस्वरूपः। स दण्डकाष्ठाजिनलक्षणः क्षितिं योऽसौ महान् क्रान्तवान् नः पुनातु॥
त्रिःसप्तकृत्वो जगतीं जिगाय कृत्वा ददौ कश्यपाय प्रचण्डः। स जामदग्न्योऽभिजनस्य गोप्ता हिरण्यगर्भोऽसुरहा प्रपातु॥
चतुष्प्रकारं च वपुर्य आद्यं हैरण्यगर्भप्रतिमानलक्ष्यम्। रामादिरूपैर्बहुरूपभेदं चकार सोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥
चाणूरकंसासुरदर्पभीतैर्भीतामराणामभयाय वेदः। युगे युगे वासुदेवो बभूव कल्पे भवत्यद्भुतरूपकारी॥
युगे युगे कल्किनाम्ना महात्मा वर्णस्थितिं कर्तुमनेकरूपः। सनातनो ब्रह्ममयः पुरातनो गूढाशयोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥
न यस्य रूपं सुरसिद्धदैत्याः पश्यन्ति विज्ञानगतिं विहाय। अतो यमेनापि समर्चयन्ति मत्स्यादिरूपाणि चराणि सोऽव्यात्॥
नमो नमस्ते पुरुषोत्तमाय पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते। नमो नमः कारणकारणाय नयस्व मां मुक्तिपदं नमस्ते॥

(वराहपुराण १५। ९-२०)

वाली पृथ्वी देवि! मणिसे प्रकट जो सुप्रभ नामका प्रधान पुरुष था, वह त्रेतायुगमें एक महान् उदार राजा हुआ। उसके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग सुनो। प्रथम सत्ययुगमें महाबाहु नामसे एक प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं। वे ही पुनः त्रेतायुगमें राजा श्रुतकीर्ति हुए। उस समय त्रिलोकीमें महान् पराक्रमियोंमें उनकी गणना थी। मणिसे उत्पन्न हुआ सुप्रभ उन्हींके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ। उस समय प्रजापाल नामसे जगत्में उसकी ख्याति हुई। एक दिनकी बात है—राजा प्रजापाल शिकारके लिये किसी ऐसे सघन वनमें गया, जहाँ बहुत-से हिंस्र जन्तु निवास करते थे। वहाँ उसे एक सुन्दर आश्रम दिखायी पड़ा, जहाँ परमधार्मिक महातपा ऋषि निवास करते थे। वे निराहार रहकर सदा परब्रह्म परमात्माका ध्यान करते थे। तप करना ही उनका मुख्य काम था। वहाँ जाकर राजाको आश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हुई, अतः वह आश्रमके भीतर गया। जंगली वृक्षोंसे उस आश्रमके प्रवेश-मार्गकी बड़ी आकर्षक शोभा हो रही थी। सघन लताएँ गृहके रूपमें परिणत होकर ऐसी चमक रही थीं, मानो चन्द्रमा चाँदनी बिखेरता हो। वहाँ भ्रमरोंको बिना प्रयास ही परितृप्ति प्राप्त होती थी। लाल कमलकी पंखुड़ियोंके समान कोमल नखवाली वराङ्गनाएँ वहाँ यत्र-तत्र सुन्दर राग आलाप रही थीं, मानो इन्द्रकी अप्सराएँ स्वर्गलोक छोड़कर पृथ्वीपर आ गयी हों। वहीं पासमें ही अनेक प्रकारके मत्त पक्षी आनन्दमें भरकर चीं-चीं-चूँ-चूँ शब्द कर रहे थे तथा भौंरे भी गूँज रहे थे। भाँति-भाँतिके प्रामाणिक (आकार-प्रकारवाले) कदम्ब, नीप, अर्जुन और साखू नामके वृक्ष शाखाओं तथा सामयिक सुन्दर फूलोंसे सम्पन्न होकर उस आश्रमकी शोभा बढ़ाते थे। आश्रमके ऊपर बैठे हुए पक्षियोंकी मधुर ध्वनिसे उसकी शोभा अनुपम हो रही थी। वहाँ रहकर सुचारु रूपसे काम करनेवाले सज्जन पुरुष धैर्यपूर्वक अपने कार्यमें तत्पर थे। प्रायः सर्वत्र यज्ञकुण्डोंसे यज्ञके धुएँ उठ रहे थे। हवन करनेसे आगकी प्रचण्ड लपटें निकल रही थीं तथा गृहस्थ ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञ आरम्भ था। अतः ऐसा जान पड़ता था, मानो पापरूपी हाथीको शान्त करनेके विचारसे अत्यन्त तीखे दाँतवाले मतवाले सिंह ही यहाँ आ गये हों।

इस प्रकार सर्वत्र दृष्टि डालते हुए राजा प्रजापालने अनेक उपायोंका आश्रय लेकर उस उत्तम आश्रमके भीतर प्रवेश किया। वहाँ चले जानेपर सामने अत्यन्त तेजस्वी मुनिवर महातपा दिखायी पड़े। उस समय पुण्यात्माओं एवं ब्रह्मवेत्ताओंमें शिरोमणि वे ऋषि कुशाके आसनपर बैठे थे। उनका तेज ऐसा था, मानो अनन्त सूर्योंने एक रूप धारण कर लिया हो। महातपाका दर्शन पाकर प्रजापालको मृगकी बात ही भूल गयी। ऋषिके सत्सङ्गसे उसके विचार शुद्ध हो गये थे। धर्मके प्रति उसकी दृढ़ एवं अद्भुत आस्था हो गयी। ऐसे पवित्र अन्तःकरणवाले राजा प्रजापालको देखकर महातपामुनिने उसका आसन एवं पाद्य आदिसे आतिथ्य-सत्कार किया और उस नरेशने भी मुनिको प्रणाम किया। वसुधे! साथ ही मुनिसे उसने यह पवित्र प्रश्न किया—'भगवन्! दुःखरूपी संसार-सागरमें डूबते हुए मनुष्योंके मनमें यदि दुस्तर संसारके तरने (विजय पाने) की इच्छा हो तो उन्हे जो कार्य करना उचित हो, वह आप मुझ शरणागतको बतानेकी कृपा करें।'

महातपाजी बोले—राजन्! संसाररूपी समुद्रमें डूबनेवाले मनुष्योंके लिये कर्तव्य यह है कि वे पूजा, होम, दान, ध्यान एव अनेक यज्ञ आदि उपकरणरूपी दृढ़ नौकाका आश्रय लें। नाव बनानेमें कीलोंकी आवश्यकता होती है। ये उपर्युक्त पूजा आदि, जिनसे मोक्ष मिलना

निर्विवाद है, कीलोंका काम देती हैं। देवसमाजसे बड़ी रस्सियोंकी आवश्यकता पूरी हो जाती है। अतः अब तुम प्राण आदिके सहयोगसे त्रिलोकेश्वररूपी नौका तैयार कर लो। भगवान् नारायण ही त्रिलोकेश्वर हैं। उनकी कृपासे नरकमें नहीं जाना पड़ता। राजन्! जो बड़भागीजन उन देवेश्वरको भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, उनकी चिन्ताएँ शान्त हो जाती हैं और वे उनके उस परम पदको पा लेते हैं, जो कभी नष्ट नहीं होता।

राजा प्रजापालने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंको भलीभाँति जानते हैं। मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सनातन श्रीहरिकी विभूतियोंका किस प्रकार चिन्तन करना चाहिये? इसे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपाने कहा—राजन्! तुम बड़े विज्ञ पुरुष हो। सम्पूर्ण योगियोंके स्वामी श्रीविष्णु जिन रूपोंमें अभिव्यक्त होते हैं, उस विभूतिका वर्णन सुनो। पितरोंके सहित सभी देवता तथा ब्राह्मणके भीतर विचरनेवाले ब्रह्मा प्रभृति—ये सब-के-सब श्रीविष्णुसे ही उत्पन्न हुए हैं—ऐसी वेदकी श्रुति प्रसिद्ध है। अग्नि, अश्विनीकुमार, गौरी, गजानन, शेषनाग, कार्तिकेय, आदित्यगण, दुर्गासहित चौंसठ मातृकाएँ, दस दिशाएँ, कुबेर, वायु, यम, रुद्र, चन्द्रमा और पितृगण—इन सबकी उत्पत्तिमें जगत्प्रभु श्रीहरिकी ही प्रधानता है। हिरण्यगर्भ श्रीहरिके श्रीविग्रहमें इनका स्थान बना रहता है और वहींसे निकलकर ये चारों ओर पृथक्-पृथक् परिलक्षित होते हैं, पर अहंता (मैं हूँ)का अभिमान उनका साथ नहीं छोड़ता। (अध्याय १७-१८)

प्रतिपदा तिथि एवं अग्निकी महिमाका वर्णन

महातपा बोले—राजन्! प्रसङ्गवश भगवान् विष्णुकी विभूतिका वर्णन कर दिया। अब तिथियोंका माहात्म्य कहता हूँ, सुनो। जब ब्रह्माके क्रोधसे अग्निका प्राकट्य हुआ तो उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—'विभो! मेरे लिये तिथि निश्चय करनेकी कृपा कीजिये, जिसमें पूजित होकर सम्पूर्ण जगत्के समक्ष मैं प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकूँ।'

ब्रह्माजी बोले—परमश्रेष्ठ अग्निदेव! देवताओं, यक्षों और गन्धर्वोंके भी पूर्व तुम सर्वप्रथम प्रतिपदाको उत्पन्न हुए हो और तुम्हारे पश्चात् इन सबका यहाँ प्राकट्य हुआ है। अतः प्रतिपद् नामकी यह तिथि तुम्हारे लिये विहित होगी। उस तिथिमें प्रजापतिके मूर्तिभूत हविष्यसे जो तुममें हवन करेंगे, उन्हें सम्पूर्ण देवताओं और पितरोंकी प्रसन्नता प्राप्त होगी। चार प्रकारके प्राणी—अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज तथा देवता, दानव, मानव, पशु एवं गन्धर्व—ये सभी तुममें हवन करनेपर तृप्त हो सकते हैं। तुम्हारे प्रति श्रद्धा रखनेवाला जो पुरुष प्रतिपदा तिथिके दिन उपवास करेगा अथवा केवल दूधके आहारपर ही रहेगा, उसके महान् फलका वर्णन सुनो—'छब्बीस चतुर्युगीतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक पूजित होगा। इस जन्ममें वह पुरुष प्रतापी, धनवान् एवं सुन्दर रूपवाला राजा होता है और मरनेपर स्वर्गमें उसे परम प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।'

इस प्रकार ब्रह्माजीके बतानेपर अग्निदेव मौन हो गये और उनकी आज्ञाके अनुसार दिये हुए लोक (अग्निलोक) को पधारे। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अग्निके जन्मसे सम्बन्धित इस प्रसङ्गको सुनेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायगा—इसमें कोई संशय नहीं। (अध्याय १९)

अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और उनके द्वारा भगवत्स्तुति

राजा प्रजापालने पूछा—ब्रह्मन्! इस प्रकार महात्मा अग्निदेवका जन्म तो हो गया; किंतु विराट् पुरुषके प्राण-अपानरूप अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति कैसे हुई?

मुनिवर महातपाने कहा—राजन्! मरीचि मुनि ब्रह्माजीके पुत्र हैं। स्वयं ब्रह्माजीने ही (अपने पुत्रोंके रूपमें) चौदह स्वरूप धारण किये थे। उनमें मरीचि सबसे बड़े थे। उन मरीचिके पुत्र महान् तेजस्वी कश्यप मुनि हुए। ये प्रजापतियोंमें सबसे अधिक श्रीसम्पन्न थे; क्योंकि ये देवताओंके पिता थे। राजन्! बारहों आदित्य उन्हींके पुत्र हैं। ये बारह आदित्य भगवान् नारायणके ही तेजोरूप हैं—ऐसा कहा गया है। इस प्रकार ये बारह आदित्य बारह मासके प्रतीक हैं और संवत्सर भगवान् श्रीहरिका रूप है। द्वादश आदित्योंमें मार्तण्ड महान् प्रतापशाली हैं। देवशिल्पी विश्वकर्माने अपनी परम तेजोमयी कन्या संज्ञाका विवाह मार्तण्डसे कर दिया। उससे इनकी दो संतानें उत्पन्न हुईं, जिनमें पुत्रका नाम यम और कन्याका नाम यमुना हुआ। संज्ञासे सूर्यका तेज सहा नहीं जा रहा था, अतः उसने मनके समान गतिवाली वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किया और अपनी छायाको सूर्यके घरमें स्थापितकर उत्तर-कुरुमें चली गयी। अब उसकी प्रतिच्छाया वहाँ रहने लगी और सूर्यदेवकी उससे भी दो संतानें हुईं, जिनमें पुत्र शनि नामसे विख्यात हुआ और कन्या तपती नामसे प्रसिद्ध हुई। जब छाया संतानोंके प्रति विषमताका व्यवहार करने लगी तो सूर्यदेवकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। उन्होने छायासे कहा—'भामिनि! तुम्हारा अपनी इन संतानोंके प्रति विषमताका व्यवहार करना उचित नहीं है।' सूर्यके ऐसा कहनेपर भी जब छायाके विचारमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो एक दिन अत्यन्त दुःखित होकर यमराजने अपने पितासे कहा—'तात! यह हमलोगोंकी माता नहीं है; क्योंकि अपनी दोनो संतानों—शनि और तपतीसे तो यह प्यार करती है और हमलोगोंके प्रति शत्रुता रखती है। यह विमाताके समान हम-लोगोंसे विषमतापूर्ण व्यवहार करती है।'

उस समय यमकी ऐसी बात सुनकर छाया क्रोधसे भर उठी और उसने यमको शाप दे दिया—'तुम शीघ्र ही प्रेतोंके राजा होओगे।' जब छायाके ऐसे कटु वचन सूर्यने सुने तो पुत्रके कल्याणकी कामनासे वे बोल उठे—'बेटा! चिन्ताकी कोई बात नहीं—तुम वहाँ मनुष्योंके धर्म और पापका निर्णय करोगे और लोकपालके रूपसे स्वर्गमें भी तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी।' उस अवसरपर छायाके प्रति क्रोध हो जानेके कारण सूर्यका चित्त चञ्चल हो उठा था। अतः उन्होंने बदलेमें शनिको शाप दे डाला—'पुत्र! माताके दोषसे तुम्हारी दृष्टिमें भी क्रूरता भरी रहेगी।'

ऐसा कहकर भगवान् सूर्य उठे और संज्ञाको ढूँढ़नेके लिये चल पड़े। उन्होंने देखा, उत्तर कुरुदेशमें संज्ञा घोड़ीका वेष बनाकर विचर रही है। तत्पश्चात् वे भी अश्वका रूप धारण करके वहाँ पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी आत्मरूपा संज्ञासे सृष्टिरचनाके उद्देश्यसे समागम किया। जब प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त सूर्यने वडवारूपिणी संज्ञामें गर्भाधान किया तो उनका तेज अत्यन्त प्रज्वलित हो दो भागोंमें विभक्त होकर गिर पड़ा। आत्मविजयी प्राण और अपान पहलेसे ही संज्ञाकी योनिमें अव्यक्तरूपसे स्थित थे। सूर्यदेवके तेजके सम्बन्धसे वे दोनों मूर्तिमान् हो गये। इस प्रकार घोड़ीका रूप धारण करनेवाली विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे इन दोनों पुरुषरत्नोंका जन्म हुआ। इसी कारण ये दोनो देवता सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारोंके नामसे प्रसिद्ध हुए। सूर्य स्वयं प्रजापति कश्यपके पुत्र हैं और

विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा उनकी पराशक्ति है। संज्ञाके शरीरमें ये दोनों पहले अमूर्त थे। अब सूर्यका अंश मिल जानेसे मूर्तिमान् हो गये। उत्पन्न होनेके बाद वे दोनो अश्विनीकुमार सूर्यके निकट गये और उन्होंने अपने मनकी अभिलाषा व्यक्त की—'भगवन्! हम दोनोंके लिये आपकी क्या आज्ञा है?'

सूर्यने कहा—पुत्रो! तुम दोनों देवश्रेष्ठ प्रजापति भगवान् नारायणकी भक्तिपूर्वक आराधना करो। वे देवाधिदेव तुम्हें अवश्य वर प्रदान करेंगे।

इस प्रकार भगवान् सूर्यके कहनेपर अश्विनीकुमार अत्यन्त कठिन तप करनेमें तत्पर हो गये। वे चित्तको समाहितकर 'ब्रह्मपार' नामक स्तोत्रका निरन्तर जप करने लगे। बहुत समयतक तपस्या करनेपर नारायण-स्वरूप ब्रह्मा उनसे संतुष्ट हो गये और बड़े प्रेमसे उन्हें वर दे दिया।

राजा प्रजापालने कहा—ब्रह्मन्! अश्विनीकुमारोंने अव्यक्तजन्मा भगवान् श्रीहरिकी जिस स्तोत्रद्वारा आराधना की थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। आप उसे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! अश्विनीकुमारोंने जिस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी स्तुति की और जिस स्तोत्रके परिणामस्वरूप उन्हें ऐसा फल प्राप्त हुआ, वह मुझसे सुनो। वह स्तुति इस प्रकार है—'भगवन्! आप निष्क्रिय, निष्प्रपञ्च और निराश्रय हैं। आपको किसीकी अपेक्षा एवं अवलम्ब नहीं है। आप गुणातीत, स्वप्रकाश, सर्वाधार, ममताशून्य और किसी दूसरे आलम्बकी अपेक्षासे रहित हैं। ऐसे ॐकारस्वरूप आप प्रभुको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप ब्रह्मा, महाब्रह्मा, ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा पुरुष, महापुरुष एवं पुरुषोत्तम हैं। महादेव! देवोत्तम, स्थाणु—ये आपकी संज्ञाएँ हैं। सबका पालन करना आपका स्वभाव है। भूत, महाभूत, भूताधिपति; यज्ञ, महायज्ञ, यज्ञाधिपति; गुह्य, महागुह्य, गुह्याधिपति तथा सौम्य, महासौम्य और सौम्याधिपति—ये सभी शब्द आपमें ही सार्थक होते हैं। पक्षी, महापक्षी और पक्षिपति; दैत्य, महादैत्य एवं दैत्यपति तथा विष्णु, महाविष्णु और विष्णुपति—ये सभी आपके नाम हैं। आप प्रजाओंके एकमात्र अधिपति हैं। ऐसे परमेश्वर भगवान् नारायणको हमारा नमस्कार है।'

इस प्रकार अश्विनीकुमारोंके स्तुति करनेपर प्रजापति ब्रह्मा संतुष्ट हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रेमके साथ कहा—'वर माँगो। तुम लोगोंको मैं अभी वह वर देता हूँ, जो देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ है तथा जिसके प्रभावसे तीनों लोकोंमें सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे।'

अश्विनीकुमार बोले—भगवन्! हमें यज्ञोंमें देव-भाग देनेकी कृपा करें। प्रजापते! हम चाहते हैं कि देवताओंके समान सदा सोमपान करनेका अधिकार मुझे प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त देवताओंके रूपमें हम-लोगोंकी शाश्वत प्रतिष्ठा हो।

ब्रह्माजीने कहा—रूप, कान्ति, अनुपम आयुर्वेद-शास्त्रका ज्ञान तथा सोम-रस पीनेका अधिकार—ये सब तुम्हें सभी लोकोंमें सुलभ होंगे।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! ब्रह्माजीने अश्विनीकुमारोंको ये सब वरदान द्वितीया तिथिको दिये थे, इसलिये यह परम श्रेष्ठ तिथि उनकी मानी गयी है। सुन्दर रूपकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको इस तिथिमें व्रत करना चाहिये। यह व्रत एक वर्षमें पूरा होता है। इसमें सदा पवित्र रहकर पुष्पोंका आहार करनेकी विधि है। इससे व्रतीको सुन्दरता प्राप्त होती है। साथ ही अश्विनी-कुमारोंके जो गुण कहे गये हैं, वे भी उसे सुलभ हो जाते हैं। अश्विनीकुमारोंके जन्मके इस उत्तम प्रसङ्गको सदा श्रवण करनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है तथा वह सभी पापोंसे मुक्त भी हो जाता है। (अध्याय २०)

गौरीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग, द्वितीया तिथि एवं रुद्रद्वारा जलमें तपस्या, दक्षके यज्ञमें रुद्र और विष्णुका संघर्ष

राजा प्रजापालने पूछा—महाप्राज्ञ ! परम पुरुष परमात्माकी शक्तिरूपा गौरीने, जिनका सभी देव-दानव स्तवन करते रहते हैं, किस वरदानके प्रभावसे सगुण विग्रह धारण किया ?

मुनिवर महातपाने कहा—जब अनेक रूपोंवाले रुद्रकी उत्पत्ति हो गयी तो उनके पिता प्रजापति ब्रह्माने स्वयं भगवान् नारायणके श्रीविग्रहसे प्रकटित हुई परममङ्गलमयी गौरीको भार्यारूपमे वरण करनेके लिये दे दिया। इन गौरीदेवीको 'भारती' भी कहा जाता है। परम सुन्दरी गौरीको पाकर रुद्रकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। तदनन्तर ब्रह्माजीने कहा—'रुद्र ! तुम तपके प्रभावसे प्रजाओंकी सृष्टि करो।' इसपर रुद्र मौन हो गये। फिर ब्रह्माने जब बार-बार प्रेरणा की तो रुद्रने उत्तर दिया—'इस कार्यमें मैं असमर्थ हूँ।' इसपर ब्रह्माजीने कहा—'तब तुम तपरूपी धनका संचय करो। क्योंकि कोई भी तपोहीन पुरुष प्रजाओंकी सृष्टि नहीं कर सकता।' यह सुनकर परमशक्तिशाली रुद्र जलमें निमग्न हो गये।

जब देवाधिदेव रुद्र जलमें प्रविष्ट हो गये तो ब्रह्माजीने उस परमसुन्दरी कन्या गौरीको पुनः अपने शरीरके भीतर अन्तर्हित कर लिया। तत्पश्चात् उनके मनमें पुनः सृष्टिका संकल्प होनेपर सात मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। प्रजापति दक्ष भी उनके साथ प्रकट हुए। इसके बाद प्रजाओंकी सृष्टि सम्यक् प्रकारसे बढ़ने लगी। इन्द्रसहित समस्त देवता, आठ वसु, रुद्र, आदित्य और मरुद्गण—ये सभी प्रजापति दक्षकी कन्याओंके वंशज विख्यात हुए। इन गौरीके विषयमे पहले भी कहा जा चुका है। कालान्तरमें ब्रह्माजीने उन्हें दक्षप्रजापतिको पुत्रीके रूपमें प्रदान किया। ब्रह्माजीने पूर्व कालमें इन्हीं गौरीका विवाह महात्मा रुद्रके साथ किया था। नृपवर ! भगवान् श्रीहरिके विग्रहसे प्रकट हुई वही गौरी दक्षकी पुत्री होकर 'दाक्षायणी' कहलायीं। दक्षप्रजापतिने जब अपनी कन्याओंसे उत्पन्न हुए दौहित्रों—देवताओंके समाजको देखा तो उनका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर उठा। साथ ही अपने कुलकी समृद्धि-कामनासे प्रजापति ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया।

उस यज्ञमें मरीचि आदि सभी ब्रह्माके पुत्र अपने-अपने विभागमें व्यवस्थित होकर ऋत्विजोंका कार्य करने लगे। स्वयं मुनिवर मरीचि ब्रह्मा बने। दूसरे ब्रह्मपुत्र अन्य-अन्य स्थानोंपर नियुक्त हुए। अत्रि ऋषिको यज्ञमें अन्य स्थान प्राप्त हुआ। अङ्गिरा मुनि इस यज्ञमें आग्नीध्र बने, पुलस्त्य होता हुए और पुलह उद्गाता। उस यज्ञमें महान् तपस्वी क्रतु प्रस्तोता बने। प्रचेतामुनि प्रतिहर्ताका स्थान सुशोभित कर रहे थे। महर्षि वसिष्ठ उस यज्ञमें सुब्रह्मण्य-पदपर अधिष्ठित थे। चारों सनत्कुमार यज्ञके सभासद थे।

इस प्रकार ब्रह्माजीसे सभी लोकोंकी सृष्टि हुई है। अतएव वे सभीके द्वारा यजन करने योग्य हैं। इसी कारण यज्ञके आराध्य ब्रह्माजी स्वयं उस यज्ञमें उपस्थित थे। पितृगण भी प्रत्यक्ष रूप धारण करके वहाँ पधारे थे। उन लोगोंकी प्रसन्नतासे जगत्में प्रसन्नता छा जाती है। वहाँ अपना भाग चाहनेवाले सभी देवता, आदित्य, वसुगण, विश्वेदेव, पितर, गन्धर्व और मरुद्गण—सबको निर्दिष्ट यथोचित भाग प्राप्त हो गये। ठीक उसी समय वे रुद्र, जो बहुत पहले ब्रह्माजीके कोपसे प्रकट हुए थे और जिन्होने अगाध जलमें मग्न होकर तप आरम्भ कर दिया था—पुनः जलसे बाहर निकल पड़े। उस समय उनका श्रीविग्रह ऐसा उद्दीप्त हो रहा था,

मानो हजारों सूर्य प्रकाशित हो उठे हों। वे भगवान् रुद्र सम्पूर्ण ज्ञानके निधान हैं। समस्त देवता उनके अङ्गभूत हैं। वे परम विशुद्ध प्रभु तपोबलके प्रभावसे सारे सृष्टि-प्रपञ्चको प्रत्यक्ष देखनेकी सामर्थ्यसे युक्त थे।

नरश्रेष्ठ! तत्काल ही उनसे पाँच दिव्य सर्ग उत्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त चार भौम सर्गोंकी भी उनसे उत्पत्ति हुई, जिनमें मरणधर्मा जीव भी थे। राजन्! अब तुम इस रुद्र-सृष्टिका प्रसङ्ग सुनो। जब एकादश रुद्रोंके अधिपति भगवान् महारुद्र दस हजार वर्षोंतक तप करके उस अगाध जलके ऊपर आये तो उन्होंने देखा—वन-उपवनोंसे युक्त सस्यश्यामला पृथ्वी परम रमणीय प्रतीत हो रही है। उसपर मनुष्यों और पशुओंकी भरमार हो रही है। उन्हें दक्षप्रजापतिके भवनमें गूँजते हुए ऋत्विजोंके शब्द भी सुनायी पड़े। साथ ही यज्ञशालामें याज्ञिक पुरुषोंके द्वारा उच्चस्वरसे किया जाता हुआ वेदगान भी सुनायी पड़ा। तत्पश्चात् उन महान् तेजस्वी एवं सर्वज्ञ परम प्रभु रुद्रके मनमें अपार क्रोध उमड़ पड़ा। वे कहने लगे—'अरे! ब्रह्माजीने सर्वप्रथम अपनी सम्पूर्ण अन्तःशक्तिका प्रयोग करके मेरी सृष्टि की और मुझसे कहा कि तुम प्रजाओंकी सृष्टि करो। फिर वह सृष्टि-कार्य दूसरे किस व्यक्तिने सम्पन्न कर दिया।' ऐसा कहकर परम प्रभु भगवान् रुद्र क्रोधित होकर बड़े जोरसे गरज उठे। उस समय उनके कानोंसे तीव्र ज्वालाएँ निकल पड़ीं। उन ज्वालाओंसे भूत, वेताल, अग्निमय प्रेत एवं पूतनाएँ करोड़ोंकी संख्यामें प्रकट हो गयीं। वे सभी अपने-अपने हाथोंमें अनेक प्रकारके आयुध लिये हुए थे। जब उन भूतगणोंने भगवान् रुद्रकी ओर दृष्टि डाली तो स्वयं उन परमेश्वरने एक अत्यन्त सुन्दर रथकी भी रचना कर ली। उस रथमें दो सुन्दर मृग अश्वोंके स्थानपर कल्पित हुए थे। तीनों तत्त्व ही तीन रथके दण्डोंका काम कर रहे थे। धर्मराज उस रथके अक्षदण्ड बने तथा पवन उसकी घरघराहट थे। दिन-रात—ये दो उस रथकी पताकाएँ थीं। धर्म और अधर्म उसके ध्वजदण्ड थे। उस वेद-विद्यामय रथपर सारथिका कार्य स्वयं ब्रह्माजी कर रहे थे। गायत्री ही धनुष हुई और प्रणवने धनुषकी डोरीका स्थान ग्रहण किया। राजन्! उन देवेश्वरके लिये सातों स्वर सात बाण बन गये थे। इस प्रकार युद्ध-सामग्री एकत्रित करके परम प्रतापी रुद्र कौतुक हो दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये चल पड़े। जब भगवान् शंकर वहाँ पहुँचे तो ऋत्विजोंके मन्त्र विस्मृत हो गये। यज्ञके विपरीत इस अशुभ लक्षणको देखकर उन सभी ऋत्विजोंने कहा—'देवतागण! आपलोग शीघ्र सावधान हो जायँ। आप सभीके सामने कोई महान् भय उपस्थित होनेवाला है। सम्भवतः ब्रह्माद्वारा निर्मित कोई बलवान् असुर यहाँ आ रहा है। मालूम होता है कि इस परम दुर्लभ यज्ञमें भाग पानेके लिये उसके मनमें विशेष इच्छा जाग्रत् हो गयी है।' इसपर देवतागण अपने मातामह दक्षप्रजापतिसे बोले—'तात! इस अवसरपर हम लोगोंको क्या करना चाहिये? आप जो उचित हो, वह बतानेकी कृपा करें।'

दक्षप्रजापतिने कहा—आप सभी लोग तुरंत शस्त्र उठा लें और युद्ध प्रारम्भ कर दें।

उनके ऐसा कहते ही अनेक प्रकारके आयुध धारण करनेवाले देवताओं एवं रुद्रके अनुचरोंमें घोर संग्राम छिड़ गया। उस युद्धमें वेताल, भूत, कूष्माण्ड, पूतनाएँ और अनेक ग्रह आयुध हाथमें लेकर लोकपालोंके साथ भिड़ गये। रुद्रके अनुचर भूतगण आकाशमें जाकर भयंकर बाण, तलवार और फरसे चलाने लगे। उस समरभूमिमें उन भयंकर भूतोंके पास उल्काएँ, अस्थिसमूह तथा बाण प्रचुर-मात्रामें थे। युद्धभूमिमें रुद्रदेवके देखते-देखते वे क्रोध-पूर्वक देवताओंपर प्रचण्ड प्रहार करने लगे। तदनन्तर

संग्रामका रूप अत्यन्त भयावह हो गया। रुद्रने भगदेवताके दोनों नेत्र एक ही बाणसे छेद दिये। उनके बाणोंसे भग नेत्रहीन हो गये। यह देखकर तेजस्वी पूषाको क्रोध आ गया और वे रुद्रसे जा भिड़े। उस महान् युद्धमें पूषाने बाणोंका जाल-सा बिछा दिया। यह देखकर शत्रुहन्ता रुद्रने पूषाके सभी दाँत तोड़ डाले। रुद्रद्वारा पूषाका दन्तभङ्ग देखकर देवसेनामें सब ओर भगदड़ मच गयी। फिर तो ग्यारहों रुद्र वहाँ आ गये। तदनन्तर आदित्योंमें सबसे कनिष्ठ परम प्रतापी भगवान् विष्णु सहसा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देवसेनाको इस प्रकार हतोत्साह हो दिशा-विदिशाओंमे भागते देखकर कहा—'वीरो! पुरुषार्थका परित्याग करके तुमलोग कहाँ भागे जा रहे हो? तुम वीरोचित दर्प, महिमा, दृढ़निश्चय, कुलमर्यादा और ऐश्वर्यभाव—इतनी जल्दी कैसे भुला बैठे? तुम्हारे भीतर ब्रह्माके सभी गुण विराजमान हैं। तुम्हें दीर्घायु भी प्राप्त हो चुकी है। अतएव भूमिपर गिरकर उन पद्मयोनि प्रजापतिको साष्टाङ्ग प्रणाम करो। यह प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जायगा और युद्धके लिये सन्नद्ध हो जाओ।'

उस समय भगवान् जनार्दनके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर सुशोभित हो रहा था। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा विद्यमान थे। देवताओंसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि गरुड़पर आरूढ हो गये। फिर तो भगवान् रुद्रसे उनका रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। रुद्रने पाशुपतास्त्रसे विष्णुको और विष्णुने कुपित होकर रुद्रपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। उनके द्वारा प्रयुक्त नारायणास्त्र और पाशुपतास्त्र—दोनों आकाशमें परस्पर टकराने लगे। एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनका यह भीषण युद्ध चलता रहा। उस संग्राममें एकके मस्तकपर मुकुट सुशोभित हो रहा था तो दूसरेका सिर जटाजालसे भूषित था। एक शङ्ख बजा रहे थे तो दूसरेके हाथमें मङ्गलमय डमरूका वादन हो रहा था। एक तलवार लिये हुए थे तो दूसरे दण्ड। एकका सर्वाङ्ग कण्ठहारमें संलग्न कौस्तुभमणिसे उद्भासित हो रहा था तो दूसरेके श्रीअङ्ग भस्मद्वारा भूषित हो रहे थे। एक पीताम्बर धारण किये हुए थे, तो दूसरे सर्पकी मेखला। ऐसे ही उनके रौद्रास्त्र और नारायणास्त्रमें भी परस्पर होड़ मची हुई थी। उन हरि और हर—दोनोंमें बलकी एक-से-एक अधिकता प्रतीत होती थी। यह देखकर पितामह ब्रह्माजीने उनसे अनुरोध किया—'आप दोनों उत्तम व्रतोंके पालन करनेवाले हैं; अतएव अपने-अपने स्वभावके अनुसार अस्त्रोंको शान्त कर दें।'

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर विष्णु और शिव—दोनों शान्त हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने उन दोनोंसे कहा—'आप दोनों महानुभाव हरि और हरके नामसे जगत्में प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। यद्यपि दक्षका यह यज्ञ विध्वंस हो चुका है। फिर भी यह सम्पूर्णताको प्राप्त होगा। दक्षकी इन देव-संतानोंसे संसार भी यशस्वी होगा।'

लोकपितामह ब्रह्माजी विष्णु और रुद्रसे कहकर वहाँ उपस्थित देवमण्डलीसे इस प्रकार बोले—'देवताओ! आपलोग इस यज्ञमें भगवान् रुद्रको भाग अवश्य दें; क्योंकि वेदकी ऐसी आज्ञा है कि यज्ञमें रुद्रका भाग परम प्रशस्त है। इन रुद्रदेवका तुम सभी स्तवन करो। जिनके प्रहारसे भग देवताके नेत्र नष्ट हुए हैं तथा जिन्होंने पूषाके दाँत तोड़ डाले हैं, उन भगवान् रुद्रकी इस लीलासे सम्बद्ध नामोंसे स्तुति करनी चाहिये। इसमें विलम्ब करना ठीक नहीं है। इसके फलस्वरूप ये प्रसन्न होकर तुमलोगोंके लिये वरदाता हो जायँगे।'

जब ब्रह्माजीने देवताओंसे इस प्रकार कहा तो वे आत्मयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके परम अनुरागपूर्वक परमात्मा भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—'भगवन्! आप विषम नेत्रोंवाले त्र्यम्बकको मेरा निरन्तर नमस्कार है। आपके सहस्र (अनन्त) नेत्र हैं तथा आप हाथमें त्रिशूल धारण करते हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। खट्वाङ्ग और दण्ड धारण करनेवाले आप प्रभुको मेरा बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आपका रूप अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओं एवं करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् है। प्रभो! आपका दर्शन प्राप्त न होनेसे हमलोग जड़ विज्ञानका आश्रय लेकर पशुत्वको प्राप्त हो गये थे। त्रिशूलपाणे! तीन नेत्र आपकी शोभा बढ़ाते हैं। आर्तजनोंका दुःख दूर करना आपका स्वभाव है। आप विकृत मुख एवं आकृति बनाये रहते हैं। सम्पूर्ण जनता आपके शासनवर्ती हैं। आप परम शुद्धस्वरूप, सबके स्रष्टा तथा रुद्र एवं अच्युत नामसे प्रसिद्ध हैं। आप हमपर प्रसन्न हों। इन पूषाके दाँत आपके हाथोंसे भग्न हुए हैं। आपका रूप भयावह है। बृहत्काय वासुकिनागको धारण करनेसे आपका कण्ठदेश अत्यन्त मनोरम प्रतीत हो रहा है। अच्युत! आप विशाल शरीरवाले हैं। हम देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो कालकूट विषका पान किया था, उसीसे आपका कण्ठ-भाग नील वर्णका हो गया है। सर्वलोकमहेश्वर! विश्वमूर्ते! आप हमपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें। भगके नेत्रको नष्ट करनेमें पटु देवेश्वर! आप इस यज्ञका प्रधान भाग स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। नीलकण्ठ! आप सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं। प्रभो! आप प्रसन्न हों और हमारी रक्षा करें। भगवन्! आपका स्वतःसिद्ध स्वरूप गौरवर्णसे शोभा पाता है। कपाली, त्रिपुरारि और उमापति—ये आपके ही नाम हैं। पद्मयोनि ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले भगवन्! आप सभी भयोंसे हमारी रक्षा करें। देवेश्वर! आपके श्रीविग्रहके अन्तर्गत हम अनेक सर्ग एवं अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद, विद्याओं, उपनिषदों तथा सभी अग्नियोंको भी देख रहे हैं। परम प्रभो! भव, शर्व, महादेव, पिनाकी, हर और रुद्र—ये सभी आपके ही नाम हैं। विश्वेश्वर! हम आपको प्रणाम करते हैं। आप हम सबकी रक्षा कीजिये।*

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर देवाधिदेव भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर उनके प्रति बोले—

भगवान् रुद्रने कहा—देवताओ! भगको नेत्र तथा पूषाको दाँत पुनः प्राप्त हो जायँ। दक्षका यज्ञ पूर्ण हो जाय। देवताओ! तुमलोगोंमें पशुत्व आ

* नमो विषमनेत्राय नमस्ते त्र्यम्बकाय च ॥
नमः सहस्रनेत्राय नमस्ते शूलपाणये। नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते दण्डधारिणे ॥
त्वं देव हुतभुग्ज्वालाकोटिभानुसमप्रभः। अदर्शने वयं देव मूढविज्ञानतोऽधुना ॥
नमस्त्रिनेत्रार्तिहराय शम्भो त्रिशूलपाणे विकृतास्यरूप। समस्तदेवेश्वर शुद्धभाव प्रसीद रुद्राच्युत सर्वभाव ॥
पूष्णोऽस्य दन्तान्तक भीमरूप प्रलम्बभोगीन्द्र मनोज्ञकण्ठ। विशालदेहाच्युत नीलकण्ठ प्रसीद विश्वेश्वर विश्वमूर्ते ॥
भगाक्षिसंस्फोटनदक्षकर्मन् गृहाण भागं मखतः प्रधानम्। प्रसीद देवेश्वर नीलकण्ठ प्रपाहि नः सर्वगुणोपपन्न ॥
सिताङ्गरागाप्रतिपन्नमूर्ते कपालधारिंस्त्रिपुरघ्न देव। प्रसीद नः सर्वभयेषु चैवमुमापते पुष्करनालजन्म ॥
पश्यामि ते देहगतान् सुरेश सर्गाद्यनेकान् वेदवराननन्त। साङ्गान् सविद्यान् सपदक्रमांश्च सर्वानलांश्च त्वयि देवदेव ॥
भव शर्व महादेव पिनाकिन् रुद्र ते हर। नताः स्म सर्वे विश्वेश त्राहि नः परमेश्वर ॥
(वराहपु० २१ । ६९-७७)

गया था, उसे भी मैं दूर कर दूँगा। मेरे दर्शनके प्रभावसे देवता उस पशुत्वसे मुक्त होकर शीघ्र ही पशुपतित्वको प्राप्त होंगे। मै आदि सनातनकालसे सम्पूर्ण विद्याओका अधीश्वर हूँ, पशुओ (बद्धजीवो)में मै उनके अधीश्वररूपमें था, अतः लोकमें मेरा नाम पशुपति होगा। जो मेरी उपासना करेंगे, वे पाशुपत-दीक्षासे युक्त होगे।

भगवान् रुद्रके ऐसा कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी अत्यन्त स्नेहपूर्वक हँसते हुए उनसे बोले—'रुद्रदेव! आप निश्चय ही जगत्मे पशुपति नामसे प्रसिद्ध होंगे। साथ ही यह दक्ष भी आपके सम्बन्धसे शुद्ध होकर संसारमें ख्याति प्राप्त करेगा। सम्पूर्ण संसारद्वारा इसका सम्मान होगा।

परम मेधावी ब्रह्माजी रुद्रसे ऐसा कहकर दक्षसे बोले—'वत्स! मैने गौरीको तुम्हे पहलेसे सौंप रक्खा है। उसे तुम इन रुद्रको दे दो।' परमसुन्दरी गौरीने दक्षके घरमें कन्यारूपसे जन्म ग्रहण किया था। ब्रह्माजीके कहनेपर उन्होंने महाभाग रुद्रके साथ उनका विवाह कर दिया। दक्षकन्या गौरीका रुद्रके पाणिग्रहण कर लेनेपर दक्षका सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जब ब्रह्माजीने रुद्रको निवासके लिये कैलासपर्वत प्रदान किया, तब रुद्र अपने गणोंके साथ कैलासपर्वतपर चले गये। ब्रह्माजी भी दक्षप्रजापतिको साथ लेकर अपनी पुरीमें पधारे।

(अध्याय २१)

तृतीया तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें हिमालयकी पुत्रीरूपमें गौरीकी उत्पत्तिका वर्णन और भगवान् शंकरके साथ उनके विवाहकी कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! जब भगवान् रुद्र कैलासपर निवास करने लगे तो कुछ समय बाद अपने पिता दक्षसे प्राणपति महादेवके साथ वैरका प्रसङ्ग गौरीको स्मरण हो आया। अब सहसा उनके मनमें रोषका भाव उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगीं—'मेरे पिता दक्षने इन देवाधिदेवको यज्ञमें भाग न देकर कितना बड़ा अपराध किया था, जिसके फलस्वरूप मेरे पिताका यज्ञके निमित्त बनाया हुआ नगर तथा उनके यज्ञका भी विध्वंस करना पड़ा। अतएव शिवके अपराधी पितासे उत्पन्न शरीरका मुझे त्याग कर देना चाहिये और तपस्याद्वारा इन महेश्वरकी आराधना कर दूसरा जन्म ग्रहण कर इनकी अर्धाङ्गिनी बनकर मुझे इन्हें प्राप्त करना चाहिये। पिता दक्षमें तो बान्धवोचित प्रेमका लेश भी नहीं रह गया है। अतएव अब उनके घर मेरा जाना भी नहीं हो सकता।'

इस प्रकार भलीभाँति विचार करके परमसुन्दरी गौरी तप करनेके उद्देश्यसे गिरिराज हिमालयपर चली गयीं। दीर्घकालतक तपस्या करके उन्होने अपने शरीरको सुखा डाला। फिर योगाग्निके द्वारा अपने शरीरको दग्ध कर वे पर्वतराज हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुई और उमा तथा महाकाली आदि उनके नाम हुए। हिमवान्के घरमें परम सुन्दर रूपसे सुशोभित होकर वे अवतीर्ण हुई कि फिर 'भगवान् रुद्र ही मुझे पतिरूपसे प्राप्त हो'। इस संकल्प-से त्रिलोचन भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए उन्होने पुनः कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। इस प्रकार जब गिरिराज हिमालयपर दीर्घकालतक तपद्वारा आराधना की तब ब्राह्मणका वेष धारण करके भगवान् शिव वहाँ पधारे। उस समय उनका वृद्ध शरीर था और सभी अङ्ग शिथिल हो रहे थे। साथ ही वे पग-पगपर गिरते-पड़ते चल रहे थे। बड़ी कठिनाईसे वे पार्वतीके पास पहुँचकर

बोले—'भद्रे ! मैं अत्यन्त भूखा ब्राह्मण हूँ, मुझे कुछ खाने योग्य पदार्थ दो ।'

उनके इस प्रकार कहनेपर परम कल्याणमयी शैलेन्द्रनन्दिनी उमाने उन ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर ! मैं आपको भोजनार्थ फल आदि पदार्थ दे रही हूँ । आप यथाशीघ्र स्नानकर इच्छानुसार उन्हें ग्रहण करें ।' उनके यों कहनेपर वे ब्राह्मणदेवता पासमें ही बहती हुई गङ्गाके जलमें स्नान करनेके लिये उतरे । उन ब्राह्मण-वेषधारी शिवने स्नान करते समय ही स्वयं मायास्वरूप एक भयंकर मकरका रूप धारण कर उन ब्राह्मणका (अपना) पैर पकड़ लिया । फिर पार्वतीको यह सब लीला दिखाते हुए कहने लगे—'दौड़ो-दौड़ो, मैं भारी विपत्तिमें पड़ गया हूँ । इस मकरसे तुम मेरे प्राणोंकी रक्षा करो और जबतक इसके द्वारा मैं नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर दिया जाता, तभीतक तुम मुझे बचा लो।'

ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर पार्वतीने सोचा—'गिरिराज हिमालय तो मेरे पिता हैं । उनका मैं पितृभावसे स्पर्श करती हूँ और भगवान् शंकरका पति-भावसे । पर मैं तपस्विनी कैसे इन ब्राह्मणदेवताको स्पर्श करूँ ! परंतु इस समय जलमें ग्राहद्वारा पकड़े जानेपर भी यदि मैं इन्हें बाहर नहीं खींचती तो निःसंदेह मुझे ब्रह्महत्याका दोष लगेगा । दूसरी बात यह है कि अन्य धर्मजनित त्रुटियों या प्रत्यवायोंका प्रायश्चित्तद्वारा शोधन भी सम्भव है; किंतु इस ब्रह्महत्या-दोषका तो शोधक कोई प्रायश्चित्त भी नहीं दीखता ।' इस प्रकार मन-ही-मन कह वे तुरंत दौड़कर वहाँ पहुँच गयीं और हाथसे पकड़कर ब्राह्मणको जलसे बाहर खींचने लगीं । इतनेमें वे देखती क्या हैं कि जिन भूतभावन शंकरकी आराधनाके लिये वे तपस्या कर रही थीं, स्वयं वे शंकर ही उनके हाथमें आ गये हैं । इस प्रकार उन्हें देखकर वे लज्जित हो गयीं और पूर्व-समयका त्याग उन्हें स्मरण हो आया । अत्यन्त लज्जाके कारण उन परमसुन्दरी उमाके मुखसे भगवान् शंकरके प्रति कोई वचन नहीं निकल रहा था । वे बिल्कुल मौन हो गयीं । इसपर भगवान् रुद्र मुसकराते हुए कहने लगे—'भद्रे ! तुम मेरा हाथ पकड़ चुकी हो, फिर मेरा त्याग करना तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है । कल्याणि ! तुम यदि मेरा पाणिग्रहण निष्फल कर दोगी तो मुझे अब अपने भोजनके लिये ब्रह्मपुत्री सरस्वतीसे कहना पड़ेगा ।'

'यह उपहासकी परम्परा आगे न बढ़े'—ऐसा सोचकर कुछ लज्जित-सी हुई पार्वती कहने लगीं—'देवाधिदेव ! महेश्वर ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं । आपको पानेके लिये मेरा यह प्रयत्न है । पूर्वजन्ममें भी आप ही मेरे पतिदेव थे । इस जन्ममें भी आप ही मेरे पति होंगे, कोई दूसरा नहीं । किंतु अभी मेरे संरक्षक पिता पर्वतराज हिमालय हैं, अब मैं उनके पास जाती हूँ । उन्हें जताकर आप विधिपूर्वक मेरा पाणिग्रहण करें ।'

इस प्रकार कहकर परमसुन्दरी भगवती उमा अपने पिता हिमालयके पास गयीं और हाथ जोड़कर उनसे कहा—'पिताजी ! मुझे अनेक लक्षणोंसे प्रतीत होता है कि पूर्वजन्ममें भगवान् रुद्र ही मेरे पति रहे हैं । उन्होंने ही दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था । वे ही संसारके संरक्षक रुद्र, ब्राह्मणका वेष धारण कर तपोवनमें मेरे पास आये और मुझसे भोजनकी याचना की । 'आप स्नान कर आइये'—मेरी इस प्रेरणापर वे वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाये हुए गङ्गामें गये । फिर वहाँ मकरद्वारा ग्रस्त हो जानेपर उन्होंने मुझे सहायताके लिये पुकारा । परंतु पिताजी ! मुझे ब्रह्महत्या न लग जाय, इस भयसे मैंने अपने हाथसे उन्हें पकड़ लिया । मेरे पकड़ते ही वे अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गये और कहने लगे—'देवि ! यह तो पाणिग्रहण है । तपोधने

इसमें तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।' उनके ऐसा कहनेपर उनसे स्वीकृति लेकर मैं आपसे पूछने आयी हूँ। अतः इस अवसरपर मेरा जो कर्तव्य हो, उसे आप शीघ्र बतानेकी कृपा कीजिये।

पार्वतीकी ऐसी बात सुनकर हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रीसे कहने लगे—'सुमुखि! मैं आज संसारमें अत्यन्त धन्य हूँ, जो स्वयं भगवान् शंकर मेरे जामाता होनेवाले हैं। तुम्हारे द्वारा मैं सचमुच संततिवान् बन गया। पुत्रि! तुमने मुझको देवताओंका सिरमौर बना दिया है; पर क्षणभर रुकना। मेरे आनेतक थोड़ी प्रतीक्षा करना।'

इस प्रकार कहकर पर्वतराज हिमालय सम्पूर्ण देवताओंके पितामह ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ उनका दर्शन कर गिरिराजने नम्रतापूर्वक कहा—'भगवन्! उमा मेरी पुत्री है। आज मैं उसे भगवान् रुद्रको देना चाहता हूँ।' इसपर श्रीब्रह्माजीने भी उन्हें 'दे दो' कहकर अनुमति दे दी।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर पर्वतराज हिमालय अपने घरपर गये और तुरंत ही तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहूको बुलाया। फिर किंनरों, असुरों और राक्षसोंको भी सूचना दी। अनेक पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, ओषधिवर्ग तथा छोटे-बड़े अन्य पाषाण भी मूर्ति धारणकर भगवान् शंकरके साथ होनेवाले पार्वतीके विवाहको देखनेके लिये वहाँ आये। उस विवाहमें पृथ्वी ही वेदी बनी और सातों समुद्र ही कलश। सूर्य एवं चन्द्रमा उस शुभ अवसरपर दीपकका कार्य कर रहे थे तथा नदियाँ जल ढोने-परसनेका काम कर रही थीं। जब इस प्रकार सारी व्यवस्था हो गयी, तब गिरिराज हिमालयने मन्दराचलको भगवान् शंकरके पास भेजा। भगवान् शंकरकी स्वीकृतिसे मन्दराचल तत्काल वापस आ गये। फिर तो भगवान् शंकरने विधिपूर्वक उमाका पाणिग्रहण किया। उस विवाहके उत्सवपर पर्वत और नारद—ये दोनों गान कर रहे थे। सिद्धोंने नाचनेका काम पूरा किया था। वनस्पतियाँ अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं तथा सुन्दर रूपवती अप्सराएँ उच्चस्वरसे गा-गाकर नृत्य करनेमें संलग्न थीं। उस विवाह-महोत्सवमें लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्माजी स्वयं ब्रह्माके स्थानपर विराजमान थे। उन्होंने प्रसन्न होकर उमासे कहा—पुत्रि! संसारमें तुम-जैसी पत्नी और शंकर-सरीखे पति सबको सुलभ हों।' भगवान् शंकर और भगवती उमा—दोनों एक साथ बैठे थे। उनसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी अपने धामको लौट आये।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! रुद्रका प्राकट्य, गौरीका जन्म तथा विवाह—यह सारा प्रसङ्ग राजा प्रजापालके पूछनेपर परम तपस्वी महातपा ऋषिने उन्हें जैसे सुनाया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम्हें बता दिया। देवी गौरीके जन्म, विवाहादि—सभी कार्य तृतीया तिथिको ही सम्पन्न हुए थे, अतएव तृतीया उनकी तिथि मानी जाती है। उस तिथिको नमक खाना सर्वथा निषिद्ध है। जो स्त्री उस दिन उपवास करती है, उसे अचल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। दुर्भाग्यग्रस्त स्त्री या पुरुष तृतीया तिथिको लवणके परित्यागपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करे तो उसको सौभाग्य, धन-सम्पत्ति और मनोवाञ्छित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, उसे जगत्‌में उत्तम स्वास्थ्य, कान्ति और पुष्टिका भी लाभ होता है।

(अध्याय २२)